महापुरूषों के उपदेश

श्री राम कृष्ण परमहंस

जो कर रहे हो वही करते रहो अभी इधर (भगवान) तथा उधर (संसार) दोनो ही और ध्यान रखकर चलो । भविष्य में जब एक (अर्थात संसार) नष्ट हो जाएगा तब देखा जाएगा । किन्तु सुबह –शाम उसका स्मर्ण मनन करते रहना । यदि तुमसे यह न हो सके तो भोजन तथा शयन करने से पूर्व एक बार उनका स्मर्ण कर लेना । और यदि यह भी न हो सके तो तु उसकी शरण में आकर निश्चिंत हो जा ।

मैं यह करूंगा और यह नहीं करूंगा मत कहो । ईश्वर की यदि इच्छा हुई तो करूँगा कहो ।

हरि का नाम निंतर स्मर्ण करो उसी से काम दूर होगा । भगवत विस्मृति के कारण ही यह जगत रूप विकार उपस्थित हुआ है ।

हठ्योग की क्रियाओं को सुनने तथा सीखने से शरीर पर ही मन निबद्ध रहेगा भगवान की और न जावेगा

संकोच, घृणा और भय इन तीनों के रहते कुछ भी नहीं हो सकता ।

जिसके अन्दर सत्यनिष्ठा है उसे सत्यस्वरूप भगवान की अवश्य प्राप्ति होती है । माँ उसकी बात मिथ्या नहीं होने देती । मैं अपना सारा भार माँ पर छोड़चुका हूं इसलिये माँ मेरा हाथ पकड़ हुए है पाँव को थोड़ा भी बेताल नहीं होने देती ।

जो ठीक –ठीक ईश्वर को पुकारता है उसके शरीर में महावायू तीव्रगति से अवश्य ही उसके मस्तिष्क में चढ़ने लगती है । कण्ठ का अतिक्रमण कर जब मन भ्रू–मध्य स्थल पर आरूढ़ होता है तब परमात्मा का दर्शन होता है तथा जीव को समाधि लगजाती है फिर उसका पतन नहीं होता । वहां से मन यदि कभी उतरे तो अधिक से अधिक कण्ठ या हृदय तक ही उतरता है । उससे नीचे नहीं उतर पाता । इक्कीस दिन तक समाधी में रहने के पश्चात आत्मा एवं परमात्मा एकात्मता को प्राप्त हो जाते है ।

हे माँ यह लो अपने शास्त्र –पुराण मुझे तो अपनी शुद्ध भक्ति दे दो । विभिन्न दर्शन तथा विचार ग्रन्थ के अध्ययन के पश्चात भी यदि किसी के मन में ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या की धारणा उत्पन्न नहीं हुई तो तो फिर उसका पढ़ना और न पढ़ना दोनो बराबर है ।

ज्ञान हो भक्ति हो या दर्शन हो ईश्वर की कृपा के बिना उसे प्राप्त करना संभव नहीं है ।

जो मन एक बार सच्चिदानंद को समर्पित कर दिया है उसे फिर वहां से हटा कर रोगदूर करने के लिए इस हाड़–माँस की गठरी पर लगाने की प्रवृति कभी होती ही नहीं ।

मैंने माँ से कहा (गले का घाव दिखाकर) इसके कारण मुझसे कुछ खाते नहीं बनता , जिससे मैं कुछ खा सकूं ऐसा उपाय तू करदे ।यह सुनकर तुम लोगों को दिखाती हुई माँ बोली क्यों भला इन सबके मुहँ से तो खा रहे हो ।

ईश्वर साकार भी है और निराकार भी जैसे जल और बर्फ भक्ति की शीतलता से अखण्ड सच्चिदानंद सागर का जल जमकर बर्फ की तरह विभिन्न आकारों में परिवर्तित होता है ।

भाव से ही प्रेम का उदय होता है ईश्वर के साथ कोई संबन्ध स्थापित करने का नाम ही भाव है । उसे अपना स्वामी , माता, पिता , मित्र कुछ भी बनालो इस भाव को खाते –पीते , उठ्ते –बैठ्ते सब समय स्मर्ण करो उससे उनपर अधिकार स्थापित हो जाता है ।

भक्ति कभी ढीली–ढाली मत करो उनकी कृपा इस जन्म में ही प्राप्त होगी – अभी होगी अपने मन में इस प्रकार का दृढ़ विश्वास रखना चाहिए अन्यथा उनकी प्राप्ति क्या सहज है ?

संसार की काम–वासनाओं को एक –एक करके त्याग देना चाहिए कार्य सिद्ध तभी होगा पर उनको एक –एक करके बढ़ते चलेगए तो भला कैसे कार्य सिद्ध होगा ।

उनके कान अत्यन्त सचेत है वे सबकुछ सुनते रहते है । उनको जितनी बार पुकारा गया है उन्होने सब सुनलिया है । एक दिन वे अवश्य दर्शन देगें कम से कम मृत्यू के समय तो अवश्य ही दर्शन देगें ।

ईश्वर ही एक मात्र गुरू, माता,पिता एवं कर्ता है । मैं हीन से भी हीन हूँ उनके दास का भी दास हूँ ऐसा भाव हमेशा रखना चाहिए ।

जैसे प्याज के छिलको को अलग कर देने पर कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता उसी प्रकार मैं क्या हूं इस विचार में प्रवृत होकर शरीर , मन , बुद्धि मैं नहीं हूं इस तरह क्रमश इन्हें प्रथक कर

देने पर यह प्रतीत होता है कि मैं नाम की कोई वस्तु है ही नहीं । सब कुछ ईश्वर ही है या जिस प्रकार गंगाजी के कुछ जल को घेर कर कोई कहे यह मेरी गंगा है ।

मैं कुछ भी नहीं हूं , मैं कुछ भी नहीं जानता ,मैं कुछ भी नहीं करता । मेरी माँ ही सब कुछ जानती है वही सबकुछ करती है – उसी से पूछो वे ही बतायेंगी ।

जिसका बनाया हुआ कानून है यदि उसकी इच्छा हो तो वह उसे तत्काल रदद भी कर सकता है या उसक स्थान पर दुसरा कानून भी बना सकता है । अर्थात ईश्वर सबकुछ कर सकता है ।

मूर्ति के खण्डित होने पर उसे पुनः जोड़कर काम में लिया जा सकता है ठीक उसी प्रकार जैसे परिवार के किसी सदस्य की हाथ या पाँव की हड्डी टूटने पर उसका ईलाज कर उसे घर में रखतें है ।

सच्चिदानन्द में जबतक मन लीन नहीं होता तब तक उसे पुकारना तथा संसार का कार्य करना दोनो ही चलते रहते है । उनमें मन लीन हो जाने पर किसी कार्य की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

केवल त्याग वैराग्य ही अमृत्व प्रदान करने में समर्थ है । क्षणिक भावोच्छ्वास से निम्न कोटि की समाधि लग सकती है किन्तु जिनके अन्दर धन, मान, इत्यादि वासनाराशि पूर्णतया विद्यमान है उनमें यह भाव कभी स्थाई नहीं हो सकता है ।

केवल शास्त्रआदि पढ़ने से होता क्या है विवेक –वैराग्य के बिना सब व्यर्थ है ।

मैं के मर जाने पर ही सारा झंझट दूर हो जाता है । अहंकार ने ही आत्मा एवं देह –इंद्रियों को एक साथ बांध रखा है तथा मानव मन में देह– इंद्रिय आदि विशिष्ट जीव हूं इस भ्रम को पक्का कर रखा है । इस विषय गांठ को काटे बिना आगे बढ़ना संभव नहीं है । उसे त्यागना ही पड़ेगा । माँ ने मुझे यह दिखा दिया है कि सिद्धियाँ विष्ठा की तरह हेय है उनकी और ध्यान नहीं देना चाहिए । साधना में संलग्न होने पर वे कभी–कभी अपने आप उपस्थित होती है । किन्तू जो उनपर ध्यान देते है वे वहीं रह जाते है भगवान की और अग्रसर नहीं हो पाते है ।

भक्तों का स्वभाव गंजेड़ी की तरह होता है । एक गंजेंड़ी अच्छितरह दम लगाने के बाद दूसरे गंजेड़ी के हाथ में चिलम दिये बिना अकेले में उसे नशा करने मे आनंद नहीं आता । उसी प्रकार भक्तवृंद भी उसी प्रकार एकत्र होते है तब उनमें से कोई भाव तन्मय होकर ईश्वरीय चर्चा किया करते है तथा आनंदित हो चूप हो जाते है एवं दूसरे को कहने का अवसर देकर स्वयं आनंद पूर्वक सूनते है ।

सन्यासियों का नाम –धाम एवं गौत्र पूछना एवं उत्तर देना दोनो ही शास्त्रविरूद्ध है । फटी–पूरानी वस्तुओं के उपयोग से मनुष्य श्री हीन हो जाता है ।

माँ कृपापूर्वक मार्ग नही छोड़देती तबतक कुछ भी होना संभव नहीं है ।

शरीर ही रोग भोगता है ,वही कृश होता है , एवं वही नष्ट होता है उससे आत्मा की क्या हानी है ।

पहले ईश्वर को प्राप्त करो उनका दर्शन तथा कृपा लाभ प्राप्त कर यथार्थ लोकहित के निमित्त कार्य करने की क्षमता से विभूषित हो इस विषय में उनकी आज्ञा या चपरास प्राप्त करो तदन्तर धर्मप्रचार या बहुजनहिताय कर्म करने के लिए अग्रसर होओ अन्यथा तुम्हारी बातों को कौन ग्रहण करेगा ।

श्री राम कृष्ण परम हंस जी प्रतिदिन हरिबोल एवं संकीर्तन ताली बजाकर उच्चस्वर में किया करते थे । एक बार श्री राम कृष्ण परम हंस जी को गात्रदाय होगया था । यह श्री रामकृष्ण देव के मन की प्रबल आध्यात्मिकता और ईश्वरनुराग के फलस्वरूप होती है । ईश्वरदर्शन की प्रचण्ड व्याकुलता से शरीर में इसप्रकार के लक्षण होते है । इसमें वे देर तक जल में पड़े रहते थे । कभी गीले फर्श पर – उपाय यह है कि उन्हें सुगन्धित पुष्पों का माल्यधारण तथा सर्वांग पर सुवासित चन्दन का लेपन करो । भक्ति मार्ग में कभी क्षुधा रोग भी हो जाता है उसमें हर समय भूख लगती रहती है – उपाय यह है कि एक कमरे में विभिन्न प्रकार के पकवान मँगाकर रखो उसी में कमसे कम तीनदिन भक्त को लगातार रखो ।

किसी ग्रहस्थ के घर जाकर कुछ खाए–पिए बिना साधु'–सन्यासी एवं अतिथि के वापस चले जाने पर उस ग्रहस्थ को पाप लगता है अतः कई बार श्री रामकृष्ण जी माँग कर पानी पी लेते थे । माँ का कार्य माँ ही कारती है । संसार के कार्यो को करने तथा लोकशिक्षा देने वाला मैं कौन हूं । यह भाव श्री राम कृष्ण जी को कभी विस्मृत नहीं हुआ । वे हमेशा कहते थे –अच्छा माँ से कहुंगा । अरे मेरी इच्छा से होता ही क्या है । माँ की इच्छा है कार्य करे न करे । जिसका अन्तिम जन्म है वही यहाँ आयेगा । ईश्वर को जिसने एक बार भी ठीक–ठीक पुकारा उसे यहाँ आना ही पड़ेगा ।

मेरे मन में किसी कार्य को करने की इच्छा होती है मुझे उसे तुरन्त ही करना पड़ता है उसमें विलम्ब करना मेरे लिए सम्भव नहीं हो पाता । इस ब्रह्माण्ड में जो व्यक्ति जिस कार्य को

कर रहा है , सोच रहा है , जो कुछ कह रहा है उसको वे ही कर रहें है, सोच रहें है ,कर रहें है इसका उन्हें अनुभव होता रहता था ।

मानव पंचेन्द्रिय तथा मन–बुद्धि की सहायता से जो कुछ देखता –सुनता या चिंतन करता है । उनके भीतर उसका कुछ भी विद्यमान नहीं है इस प्रकार के अनुभव को ही शास्त्रों में नेति –नेति कहा गया है ।

अरे सम्मानित व्यक्तियों का सम्मान न करने से भगवान रूष्ठ होते है । उनकी शक्ति से ही वे श्रेष्ठ बने है भगवान ने ही उन्हें श्रेष्ठ बनाया है उनकी अवज्ञा ईश्वर की अवज्ञा है ।
किसी भी गुणी व्यक्ति का समाचार मिलता उसे स्वयं ही बिना बुलाए जाकर दर्शन ,वार्तालाप तथा प्रणाम कर आते ।

एक बार काली मंदिर में भिखारियों के भोजन की झूठी पत्तलों को माथे पर लाद कर बाहर फैंक आये । नारायण बुद्धि से उनमें से कुछ ग्रहण भी कर लिया फिर बोले माँ मैं श्रेष्ठ हूं इस प्रकार का भाव मेरे मन में कभी उदित न हो

यह जानना की तेरे ही इष्टदेव काली, कृष्ण तथा गौरांग आदि सब कुछ बने है पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं तुझसे अपने इष्ट को त्यागकर गौरांगप्रभू को भजने को कह रहा हूं किन्तु अन्य रूपों के प्रति द्वेषबुद्धि को त्याग देना उनके प्रति श्रही श्रद्धा –भक्ति रखना परन्तुं स्मर्ण इष्ट का ही सदैव रखना ।

अपने सभी मित्र एवं रिश्तेदारों को ईश्वर का रूप एवं उनके कार्यो को ईश्वर का कार्य समझकर करो ।

जो लोग तंत्र वा वाम साधना से ईश्वर प्राप्त करते है इसमें उन लोगों का कोई दोष नहीं है वे सोलह आने मन से यह विश्वास करते है कि वही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है । उनकी निन्दा उचित नहीं है । परन्तु दूसरे के भाव को निजी कहकर अपनाने का प्रयास भी मत करो ।

अच्छा – बुरा , निन्दा –स्तुति शौच –अशौच , आदि कुछ भी मैं नहीं समझ पाता था । केवल एक ही चिंतन एक ही भाव – कैसे उसकी की प्राप्ति होगी । मेरे ह्रदय में सदा यही जागरूक रहा करता था । लोग कहते थे पागल हो गया है ।

भगवत भक्ति ही संसार में एक मात्र सार वस्तू है , जीवन क्षण स्थाई है । जो कुछ करना हो तुरंत करलो ।

पवित्र तीर्थो में दीर्घकाल तक तप,जप,ध्यान आदि क्रियाएं हो चुकि होती है कितने ही सिद्ध पुरूषों का आगमन होता है । अतः वहाँ पर ईश्वर का प्रकाश निश्चितरूप से विद्यमान होता है । इसलिए सहज ही उस जगह ईश्वरीय भाव वहां पर उद्दीपन होता है तथा उनका दर्शन भी होसकता है वहां एकांत में बैठकर ईश्वर का चिंतन भजन करो और वहां से लोटकर पुनः विषय –वासनाओं में लिप्त मत होओ ।

चारों कोनों में चक्कर लगाआओ अपने आप पता चलजाएगा कि कहीं भी कुछ नही है जो कुछ है इस शरीर में ही है । अपने भीतर अवस्थित ईश्वर के प्रति अपने भक्ति प्रेमभाव को उद्दीप्त किए बिना भ्रमण से कुछ लाभ नहीं है ।

अनेक तपस्या तथा साधनों के फल से ही मनुष्य सरल तथा उदार बना करता है । सरल हुए बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है । सरल विश्वासी के समीप ही वे अपना स्वरूप प्रकट किया करते है ।

ब्रज में जाकर मैं सब–कुछ भूल चुका था । वहां से लौटने की इच्छा नहीं थी ।

संसार में माता–पिता परम गुरू है जब तक वे जीवित रहते है तबतक यथाशक्ति उनकी सेवा करनी चाहिए । उनके देहावसान होने पर यथासाध्य श्राद्ध आदि करना चाहिए । केवल ईश्वर के लिए माता–पिता की आज्ञा का उल्लघंन किया जा सकता है ।

वास्तव में ईश्वर के अतिरिक्त इस संसार में और कोई दूसरा कर्ता नहीं है । अहंकृत मानव भले ही यह सोचता रहे कि वही समस्त कार्यो को कर रहा है किन्त यर्थाथ में वह परिस्थितियों का दास मात्र है जितना अधिकार उसे दिया गया है उतना ही वह समझने एवं करने में समर्थ है ।

पुरूष अकर्ता है वह कुछ भी नहीं करता प्रकृति ही सब कुछ किया करती है पुरूष साक्षी बनकर प्रकृति के उन कार्यो को देखता है । ब्रह्म एवं ब्रह्मशक्ति अभेद है । प्रकृति एवं पुरूष अभेद है जैसे साँप चल रहा है तो उस समय मानो प्रकृति पुरूष से पृथक होकर कार्य कर रही है । जिस समय साँप सो रहा है तब उसका पुरूष भाव है उस समय प्रंकृति पुरूष के साथ एकात्मकता प्राप्त की हुई है । माया ईश्वर की है तथा सदा ईश्वर में विद्यमान रहने पर भी ईश्वर कभी माया बद्ध नहीं होते जैसे साँप के मुहँ में जहर उसे प्रभावित नहीं करता परन्तु जिसे वह काटे वह मर जाता है ।

समस्त ब्रह्मन्तर प्रकृति जगदम्बा के लीलाविलास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । अपना सारा भार ईश्वर पर छोड़ दो (भजन संभव न होने पर) आंधी की पत्तल की तरह – चैतन्य वायू मन को जिधर फिराना चाहे उधर ही फिरना चाहिए बस इतना ही ।

संसार अनित्य एवं असत है इसका ज्यों ही तुम्हें ठीक–ठीक बोध होगा त्यों ही तुमहें ठीक –ठीक बोध होगा त्यों ही तुम उससे प्रेम करना छोड़ दोगे । हृदय से आसक्ति को त्यागकर वासना रहित हो जाओगे त्यों ही तुम्हें ईश्वर का साक्षात्कार होगा ।

माँ जगदम्बा से चपरास या सामर्थ प्राप्त किये धर्मप्रचार या परोपकार के लिए प्रवृत्त होने पर वह सर्वथा निरर्थक हो जाता है तथा कभी–कभी अहंकार के बढ़ने पर वह जीव का सर्वनाश भी कर देता है ।

वास्तव में तू बड़ा बुद्विहीन हे तू क्या समझता है भाव समाधी होने पर सब कुछ हो जाता है । क्या वही सबसे श्रेष्ठ वस्तू है ? ठीक –ठीक त्याग तथा विश्वास उससे भी कहीं अधिक श्रेष्ठ है । नरेन्द्र को देख उसे इस प्रकार दर्शनआदि नहीं होते किन्तु देख न उसका त्याग , विश्वास , निष्ठा तथा मानसिक तेज कितना अपूर्व है ।

निर्विकल्प समाधि होने पर कुछ दिन केवल अपने हाथ का ही बना खना खना चाहिए । अन्य के हाथ का नहीं ज्यादा से ज्यादा माँ के हाथ का खा सकते हो अन्यथा यह भाव नष्ट हो जाता हे । बाद में यह भाव सहज बन जाता हे तब भय नहीं रहता ।

भक्ति में वायू वृद्धि रोग होने पर कुछ खालेना चाहिए। एक भक्त का बाहरी शुद्धता पर अधिक ध्यान था उसे कहा लोग जहाँ। टट्टी फिरते है , वहां की मिट्टी से एक दिन तिलक लगाकर तुम ईश्वर का स्मरण करना ।

मधुरभाव कामभाव से नारी का स्पर्श करते ही नष्ट हो जाता है । ग्रंथ आदि के अधिक अध्ययन की अपेक्षा भजन – साधन में ही अधिक मन लगाओ । उसी से ईश्वर साक्षात्कार होगा ।

किसी भी स्थान , गाड़ी आदि को छोड़ कर जाते समय अच्छी तरह देखभाल कर लेनी चाहिए कि कोई चीज रह या छूट न गई हो । भक्त बनना है तो भक्त बनो बुद्धु क्यों बनते हो ।

पाने का प्रश्न ही क्या है । ईश्वर को प्राप्त करने के अतिरिक्त मेरी और कोई आकांक्षा ही नहीं है और उनकी प्राप्ति भी उनकी कृपा के बिना संभव नहीं है इसलिए पड़े –पड़े उन्ही को पुकार रहा हूँ दीन–हीन समझकर सम्भवतः किसी दिन वे मुझपर कृपा करेंगे ।

व्यक्ति का मन काम एवं कांचन के वज्र बन्धन में बंधा हुआ है । जब तक यह दूर न होगा मुक्ति असम्भव है। यह माँ की कुपा से ही दूर होता है ।

व्यर्थ तर्क –वितर्क , शास्त्र अध्ययन में कर्म समय नष्ट न कर सवर्स्व वासनाएं त्यागकर ईश्वर के प्रति भक्तिपूर्ण हृदय से पूर्णतया निर्भयशील हो व्याकुलता के साथ उन्हें पुकारते हुए अपने जीवन के अवशिष्ठ दिन बिता दो जिससे उनकी कृपा एवं दर्शन हो सकें ।

जितनी भी नारी मूर्तीयां है वे सभी साक्षात जगदम्बा की मूर्ति है सभी के भीतर वही हे इसलिए मानव को नारी मूर्तिमात्र का पूजन करना चाहिए उसे केवल भोग्य वस्तु समझ कर सकाम रूप से स्त्री शरीर को देखने से जगन्माता की ही अवहेलना होती है जिससे मानव का बहुत अकल्याण होता है ।

2.स्वामी रामतीर्थ –

स्वामी जी कभी –कभी भगवान कृष्ण के ध्यान में मग्न होकर चिल्लाते थे –आओ कृष्ण मुझे दर्शन दो , तुम्हारे दर्शनों के बिना मैं व्याकुल हो रहा हूं । कभी कहते व्यर्थ समय नष्ट मत करो प्रत्येक श्वास के साथ ओम का उच्चारण करो ।

एक बार अपना सारा धन गंगा में बहाते हुए कहा कि हमने धन गंगा में बहा दिया है । यहां हम भजन साधना करने आए है । हमें एक मात्र ईष्ट के ऊपर ही अपने जीवन को छोड़ना चाहिए । वो जिस प्रकार हमें रखेंगें हम रहेंगें ।

स्वामी रामतीर्थ को ईष्ट मिलन की वेदना छटपटाती रहती थी । उनकी जिव्हा रात–दिन ओम का जाप करती थी वो इष्ट का प्रकाश रूपी दर्शन भी कर चुके थे । वे समय निकालकर स्वाध्याय भी करते थे । व्यायाम भी उनके जीवन का अंग था ।

स्वामी राम को पहाड़ी यात्राएं प्रिय थी उनके शरीर पर कम्बल कौपिन के अतिरिक्त कोई वस्त्र नहीं था । नंगे पाँव नुकीली चट्टानों कांटों भरी झाड़ियों के मार्ग से आगे बढ़े जा रहे थे ।

कभी कहते अखिल ब्रह्माण्ड मेरी ही आत्मा का स्थूल रूप होने के कारण मैं किसे दोष दूं और किसकी आलोचना करूं । ओ मौत बेशक उड़ादे मेरे एक एक जिस्म को ,मेरे और शरीर ही मुझे कुछ कम नहीं । सिर्फ चांद की कीरणें ,चांदी के तारे पहन कर चैन से काट सकता हूं ।

इंद्रियों का संयम जीवन में महत्वपूर्ण सफलता लाता है । पर इनका संयम कठिन साधना से ही आता है । परोपकार , परिश्रम ,एवं त्याग मानव को देवताओं की श्रेणी में रखदेता है । देवता दूसरों को देते है ,लेते नहीं ।

हमारे विचारों का प्रत्येक स्पंदन ब्रह्मसत्ता से टकराकर लौट आता है । यदि हम घृणा प्रेक्षपित करते है तो वो लौट्कर दूगनी शक्ति से हम पर प्रहार करती है । यदि हम प्रेम प्रक्षेपित करते है तो वे भी लौट्कर हमें प्रभावित करता है ।

न हर भूलो न जग छोड़ो , कर्म कर जिन्दगानी में ।
रहो दुनिया में यूं जैसे कमल रहता है पानी में ।।

व्यर्थ चिंता , संकल्प व बेबुनियाद अनुमान मनुष्य की बुद्धि को भ्रष्ट करदेते है । यदि हम अपने ईष्ट को प्रसन्न करना चाहते है तो प्राणी मात्र से प्रेम करना चाहिए । यदि खुशी –खुशी मेंहदी की पत्तियों की भॉंति पिसने को तैयार नहीं है तो उसकी हथेलियों को रचने की तुम्हारी आशा झुठी है ।

अपना कर्तव्य करो पर न कोई प्रयोजन हो न कोई इच्छा । अपना कार्य करो ,कार्य में ही रस लो ,क्योंकि कार्य स्वयं सुखरूप है, ऐसा कार्य ही आत्म साक्षत्कार का माध्यम बन जाता है ।

उन्नति के लिए वातावरण तैयार होता है ,सेवा और प्रेम से न कि विधि –निषेधात्मक आज्ञाओं और आदेशों से ।

समाधी में निज पर ,अपना –पराया भेद , विश्व की यहां तक की ईष्ट की सुधि भी नहीं रहती है ।अपनी ही आत्मा में ईश्वर के दर्शन पाने का उपाय है ,समस्त इच्छाओं का त्याग । ओम की ध्वनी में निवास करो ।

वेदान्त आलस्य नहीं सिखाता अपितु कर्म एवं कर्तव्य सिखाता है । चिंता,शोक ,भय आदि से निवृत्त होकर शाश्वत शांति प्रदान करता है । वेदांत ज्ञाता मनुष्य सदा सजग रहता है । उसकी करनी –कथनी में भेद नहीं रहता ।

जिस दिन संसार से दृढ़ वैराग्य होजाए तभी सन्यास लो ,उसकी आयू नहीं है पर इस भरी जवानी नए उत्साह से कार्य करो ,अपने भाग्य का निर्माण करो –जो पुष्प ताजा है ,सूंघा–मसला नहीं है उसे ही भगवान के चरणों में चढ़ाया जाता है । भगवान उसे ही ग्रहण करते है । इस यौवन भरे जीवन को ही उसे अर्पित करना है ।

आत्म ज्ञान के अभाव में जीवन उस नौका की भांति है जिसको चलाने वाला सुध में नहीं है और नौका को चलाकर आगे लिए चला जा रहा है । इससे पूर्व कि ये जाने कि मेरा क्या होना है ,यह ज्ञान करना अनिवार्य है कि मैं क्या हूं ।

सज्जन मनुष्य सज्जनता नहीं छोड़ते चाहे दुष्ट मनुष्य उन्हें कितना ही कष्ट दें वे उनकी भी भलाई की बात ही सोचते है । उन्हें हानी पहुंचाने का विचार भी मन में नहीं लाते ।

जो कष्टों से घबराते है उन्हें तो पर्वतीय शिखरों की यात्रा करने का विचार ही नहीं करना चाहिए । प्रकृति हमें बहुत कुछ सिखाती है ,कितने कष्ट आएं घबराओं नहीं । अपनी उदार भावनाओं को और अधिक उदार बनाओ ,दूसरों के उपकार में ही अपना सारा जीवन व्यतीत करो ।

यदि आप वेदान्त को जान लेते है तो नर्क भी आपके लिए स्वर्ग होगा । कभी कोई चिंता परेशानी नहीं होगी ,चित्त सदैव एकाग्र , प्रसन्न और तत्पर रहेगा । जीवन सचमुच जीने योग्य होगा ।

एकांत एवं मौन से शक्ति का संग्रह करो ।

सर्वे भवतुं सुखिनः सर्वे संतु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्चन्तु मा कश्चिद दुःखमाप्नुयात ।।

(सभी मनुष्य सुखी हों , सभी निरोगी हो , चारों और कल्याणकारी दृश्य हो और किसी को भी दुख प्राप्त न हो ।)

ओम का उच्चारण करने से साधक का मन तुरंत एकाग्र एवं वश में हो जाता है । श्रम ,त्याग, आत्मविस्मृति , सार्वभौम प्रेम , प्रसन्नता , निर्भिकता एवं स्वावलम्बन ही सफलता के सिद्धान्त है । एकाग्रता ,नम्रता, सत्यता ही मानव को ऊपर उठाती है ।

जो अपने हृदय की र्निद्वंद्व शांति में ही स्थित रहता है । बाहर का शोर –शराबा उसे प्रभावित नहीं करता यही शांति तो जीवन का रहस्य है । इसी को मन की एकाग्रता कहते है । यही वह संगीतमय मौन है ,जहां बड़े –बड़े विचारों का जन्म होता है । वे स्वप्न प्रकट होते है जो मानव जाति को उन्नति के पथ पर ले जाएं यही वेदान्त का योग है ।

जो ईट दीवार के योग्य होगी वह चाहे जहां पड़ी हो एक दिन अवश्य उठाली जाएगी । योग्य मनुष्य का आदर प्रत्येक स्थान पर होगा चाहे वह कहीं भी रहे । परोपकार कभी व्यर्थ नहीं जाता ।

जो अपने प्राणों की रक्षा करेगा वह उससे हाथ धो बैठेगा । जो प्राणों को उत्सर्ग करेगा वह अमर हो जाएगा ।

मनुष्य का आनन्द जन्म से मृत्यू तक यात्रा करता ही रहता है । कभी यहां ठहरा कभी वहां कभी इस वस्तू पर ठहरा कभी दूसरी वस्तू पर इसलिए इंद्रियों के विषयों में आनंद की खोज मत करो ।

प्रत्येक वस्तू की अच्छाई पर उसके उज्जवल पहलू पर दृष्टि डालो ,सदैव किसी न किसी कार्य में लगे रहो तभी मन ठीक रहेगा । आलस्य मत करो ,आलस्य मौत है । भीख मत मॉंगों ,अपने को छोटा मत समझो , ब्रह्मोऽहम ,शिवोऽहम का सदा जाप करो । दिन में सदा ओम का जाप करो ।किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप मत करो ।

मन से जाप करो ,किसी और विषय में सोचते हुए जाप मत करो ,एकाग्रचित व लगन से ओम का जाप करो । स्वस्थ शरीर से ही सभी साधनाएं सम्भव है इसलिए प्रतिदिन व्यायाम भी करो एवं स्वाध्याय एवं ध्यान भी करों ।

कल्याणमयी आत्मा न प्रशंसा से काम और न निंदा से प्रयोजन , न कोई मित्र न कोई शत्रु न प्रेम व घृणा , न शरीर न उसके संबन्धि , न है घर न परदेश , संसार की कोई भी बात महत्व की नहीं होती है । ईश्वर है ,ईश्वर सच्चा है , ईश्वर ही एकमात्र सच्चाई है । किसी की परवाह नहीं, सब कुछ भले ही चला जाए केवल परमात्मा मात्र रहे ,परमात्मा ही सबकुछ है यह भाव जीवन में शांति एवं आनन्द लाता है ।

लोक सेवा ही ईश्वर की सेवा है । चित्त को प्रसन्न रखने से ही सब दुःख दूर भागते है । जब हम शारिरिक आकांक्षाओं के स्थल पर उतर आते है ,तभी हमारा चित्त मलीन , उदास और शोकातुर होता है । स्वार्थपूर्ण कामनाएं छोटी–मोटी तुच्छ ईच्छाएं हमें घेरे रहती है । भूत –भविष्य और वर्तमान की चिंता किए बिना लगन एवं परिश्रम से कार्य करो ,तुम्हें अवश्य सफलता प्राप्त होगी । आसक्तियों से ऊपर उठते ही चित्त स्वयं स्थिर होगा । लगातार ओम का जाप करो मन में स्थिरता , प्रसन्नता एवं पवित्रता आएगी । प्रतिक्षण मन को आत्मा में लीन रखो । प्रेम रुपी आत्मा में ही रहकर श्वास लेना चाहिए । तुम देह ,मन नहीं हो ,सत्य हो, ,ब्रह्म हो , शिव हो , शक्ति हो ,सत–चित –आनन्द हो । आत्मा को पहचानों ।

जबतक किसी भी प्रकार की ईच्छा या वासना मन में है । आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता । यह अटल सत्य है । जब आप ब्रह्म को बिसारते है ,समझ लो दुःखों को बुलाते हो । आत्मदृष्टि खोलो तन संसार के तत्व ऐसे हो जाते है जैसे किसी के अपने हाथ –पाँव ,जिसप्रकार चाहें उन्हें हिलाओ । उपासना तथा ज्ञान में कोई अंतर नहीं है । आत्मानंद में मग्न रहना भी उपासना है, यही ज्ञान भी है ।

मनुष्य का एक मात्र लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार है प्रतिदिन ओम का जाप करो मन को एकाग्र करके यह धारणा करो मैं शिव हूं ।

ध्यान से थकने पर जाप करो और जाप से थकने पर ध्यान करो । इसप्रकार ध्यान एवं जाप द्वारा शिघ्र ही मोक्ष प्राप्त हो जाएगी ।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं वह निराकार शक्ति है । तुम उसके सामने कैसे हो सकोगे ? जहां तुम देखोगे वहीं वह है ,जो तुम देखोगे वही वह है जिस दिन आँख खुलेगी सभी वह है बस तुम मिट जाओ ,आँख खुल जाएगी । अहंकार तुम्हारे आंख की कंकरी है , वह हटते ही परमात्मा प्रकट हो जाएगा ।

ऑख बंद कर बैठने पर पता चलता है भीतर की कोई उम्र नहीं होती तुम पॉच साल के थे अब पचास के हो ,तुम अपने को वैसा ही पाओगे । भीतर के लिए समय बीतता ही नहीं ।

सभी भाव आते और चले जाते है । काम ,क्रोध ,लोभ ,मोह,ईर्ष्या ,दया ,घृणा । इनसे ज्यादा ग्रसित होने की जरुरत नहीं है । साक्षी भाव रखो ये आयेंगें और चले जाएंगें । इनमें ज्यादा बहो मत । धीरे–धीरे इस अभ्यास से व्यर्थ गिरने लगेगा । संसार से संबंध टूट जाएगा । इसी को नो –माईंड ,उन्मनी दशा ,चित्त का खो जाना एवं निर्विकल्प समाधी कहते है । चेष्टा से ये दशा प्राप्त नहीं हो सकती ,बल्कि चेष्टा से वह करना मुश्किल हो जाता है । नींद भी चेष्ट करने से नहीं आती, वह सभी चेष्टाएं छोड़ने पर आती है । जब तुम सभी चेष्टाएं छोड़कर निष्पाप होते हो तो ध्यान घटित होता है । चेष्टा से मन सक्रिय होता है ।
शारिरिक कार्य से विषय को आधी ऊर्जा प्राप्त होती है । फालतू होने पर वह विचार अधिक करता है ।

मैं बादशाह इसलिए हूं कि मुझे किसी चीज की जरुरत ही नहीं है । जिस दिन मैंने अपना छोटा सा आंगन छोड़दिया , सारा आकाश मेरा आंगन हो गया । जिस दिन मैंने अपने छोटे से दिये को बुझा दिया , सारे आकाश के तारे मेरे दिये हो गये ।

३. पारासर मुनि– (पारासर मुनि राजा जनक एवं का संवाद) –

सभी लोगों को सांतवना देने वाला(यही अभय दान है), भूखों को भोजन देने वाला , प्रिय वचन बोलने वाला , सभी का सत्कार करने वाला , सुख –दुःख में सम रहने वाला , इस लोक एवं परलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

जिस प्रकार शुद्ध सूर्यकांत मणी सूर्य के तेज को ग्रहण कर लेती है उसी प्रकार योग का साधक समाधि द्वारा ब्रह्म के स्वरुप को ग्रहण कर लेता है ।

जिस व्यक्ति की बुद्धि विषयों में आसक्त होती है । वह किसी तरह अपने हित की बात नहीं समझता है और अंत में दुःख प्राप्त करता है । संसार केले के वृक्ष के भितरी भाग की भांति निस्सार है ।

कियाओं का विस्तार दुःखदायक होता है और संक्षेपण सुखदायक होता है । कोई न कोई मनोरथ लेकर लोग मित्र बनाते है । पत्नि ,पुत्र, सेवक , एवं कुटुम्बी जन भी अपने –अपने स्वार्थ का ही अनुसरण करते है । माता–पिता भी परलोक साधन में सहायता नहीं कर पाते है । परलोक में अपना किया सत्कर्म एवं दान ही राह खर्च का कार्य करता है । जिसके मन में दुविधा नहीं होती , जो उद्यमी , शुरवीर , धीर और विद्वान होता है उसे सम्पत्ती वैसे ही नहीं छोड़ती जैसे किरणें सूर्य को । वैसे ही जो उदार ह्रदय वाले है और आस्तिक भाव ,गर्वहीनता के साथ उत्तम कर्म करते है ,उनके कार्य असफल नहीं होते है । धन या निर्धनता ,सुख एवं दुःख दोनों में ही व्यक्ति ज्ञान एवं भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

ब्राह्मणों को पुरस्कार एवं प्रतिष्ठा की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए । ये चीजें विद्वता को दीमक की तरह धीरे –धीरे नष्ट कर देती है ।

मनुष्य नैत्र ,मन ,वाणी,और किया द्वारा चार प्रकार के कर्म करता है । जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है । आयू अत्यन्त दुर्लभ है । मनुष्य जन्म पाकर उसे पुण्य कर्मों का अनुष्ठान द्वारा आत्मा का उत्थान करना चाहिए । अनजाने में जो पाप हो जाए उसे तपस्या द्वारा नष्ट करो , जो पाप नजर में आए उसे प्रायश्चित एवं शुभकर्मों द्वारा नष्ट करो । सदैव अहिंसा व्रत का पालन करो ।

श्रेष्ठ पुरूष से लिया गया एवं श्रेष्ठ पुरूष को दिया गया दान दोनों के लिए हितकर होता है । फिर भी ब्राह्मण के लिए दान देना अधिक पुण्यमय माना गया है ।

जो राजा धर्म पूर्वक प्रजा की रक्षा करता है एवं न्याय व्यवस्था बनाए रखता है । जो ब्राह्मण स्वाध्याय करता है एवं ज्ञान देता है । जो वैश्य धर्मानुसार धनोपार्जन कर दान देता है । जो शुद्र सदा द्विजातियों की सेवा करता है वे इस लोक एवं परलोक में सम्मानित होते है ।

धर्म करने के लिए न्याय को त्याग कर पापमिश्रित मार्ग से धन का संग्रह मत करो । तप मनुष्य को स्वर्ग की राह पर लाता है । असंतोष ही दुःख का कारण है जिसे धर्म, तपस्या और दान में संदेह उत्पन्न हो जाता है ,वह पाप कर्म करके नर्क में पड़ता है ।

जो मनुष्य सुख एवं दुःख में सदाचार से कभी विचलित नहीं होता है ,वही शास्त्र का ज्ञाता है । ग्रहस्थ मनुष्य को सदा बिना प्रयत्न के अपने –आप प्राप्त विषयों का ही सेवन करना चाहिए और प्रयत्न करके धर्म का भी पालन करना चाहिए । सामान्य धर्म –अहिंसा ,दान, श्राद्धकर्म , अतिथि –सत्कार , सत्य , अक्रोध , अपनी पत्नि से संतुष्ट रहना ,पवित्रता रखना ,किसी में दोष न देखना , निन्दा या चुगली न करना , सहनशीलता एंव आत्मज्ञान का प्रयास करना है ।

पिता ,सखा ,गुरूजन, स्त्री गुणहीन व्यक्ति का साथ नहीं देते है । दूसरी और यही लोग प्रभू भक्त , प्रियवादी ,परोपकारी और इंद्रिय –विजयी का त्याग नही करते है ।

असली ज्ञान आत्मा में ही स्थित है । उससे साक्षात्कार के पश्चात ही वह प्रकट होता है ।

अपने देश की रक्षा करते हुए जो वीर गति को प्राप्त होता है वह सीधे स्वर्ग को जाता है और नाना प्रकार के सुख– भोग प्राप्त करता है । यदि जीवित रह गया तो धरती पर सुख भोग करता है ।

अगर धर्म का विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाए तो वह इहलोक और परलोक दोनों में कल्याणकारी होता है । धर्म को जानने वाला और उसका आश्रय लेने वाला व्यक्ति स्वर्ग लोक में सम्मानित होता है ।

वेद –शास्त्रों को स्वाध्याय करके ऋषियों , यज्ञ कर्मो द्वारा देवताओं , श्राद्ध और दान से पितरों तथा स्वागत सत्कार एवं सेवा द्वारा अतिथियों के ऋण से छुटकरा होता है । इसी प्रकार वेद –वाणी के पठन , श्रवण एवं मनन से , यज्ञ शेष अन्न के भोजन से तथा जीवों की रक्षा से मनुष्य अपने ऋण से मुक्त हो होता है । भरणीय कुटुम्बीजनों का भरण–पोषण का आरम्भ से ही प्रबन्ध करना चाहिए । इससे उनके ऋण से मुक्ति मिलती है ।

धर्म के विपरीत कर्म यदि लौकिक दृष्टि से बहुत लाभदायक हो तो भी बुद्विमान पुरूष उसका सेवन नहीं करते । मृत्यू से कोई बचा नहीं सकता , जिसकी आयू शेष हो उसे कोई मार नहीं सकता । यह शरीर नस ,नाड़ियों और हड्डीयों का समूह है जिसमें अपवित्र मल ,मूत्र ,पसीना , रक्त भरा है । शरीर का बाहरी भाग चमड़ा मात्र है । और इसका विनाश एवं क्षरण निश्चित है । अतः इससे प्रीत मत करो ।

उपभोग के साधन न होने पर भी मनुष्य को हीन नहीं समझना चाहिए । चाण्डाल की योनी में भी अगर जन्म हो तो वह मापत्तर प्राणियों से बेहतर है । क्योंकि इय योनी में वह शुभ कर्मो एवं भक्ति का अनुसरण कर आत्मा का उद्वार कर सकता है ।

चैतन्य महाप्रभू – एक मात्र हरिनाम के भीतर ही जीव की कल्याण कारिणी समस्त शक्ति विद्यमान है । यह जानकर संसार के सुखभेग को तिलांजलि दे प्रभूनाम स्मर्ण करों ।

अपनी आय का 1/5 भाग धर्म एवं दान हेतु , 1/5 भाग यश हेतु , 1/5 भाग स्वयं के लिए , 1/5 भाग मूलधन की रक्षा के लिए एवं 1/5 भाग आश्रितों के लिए रखना चाहिए

भगवान परशुराम जी – जो अन्याय सहन करता है वह ब्राह्मण है ही नहीं । क्योंकि वेद शास्त्रों के अध्ययन से तर्क शक्ति एवं अहंकार दोनों ही बढ़जाते है ।

सतसंगत एवं बुरी संगत तुरंत फल प्रदान करने वाले कार्य है । ये अपना फल निश्चित रूप से प्रदान करते है । सतसंग का निंतर सेवन करने से व्यक्ति ईश्वर एवं मोक्ष को सहज रूप से प्राप्त करलेता है । भक्ति , ध्यान , ,परोपकार आदि जो अच्छे कर्म हैं उनके लिए अच्छे विचार होने चाहिएं और सतसंग अच्छे विचारों के निर्माण एवं उन्हें बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । सतसंग में अच्छी पुस्तक , अच्छा व्यक्ति एवं अच्छे विचार का

चिंतन – मनन शामिल है । बुरी पुस्तक , व्यक्ति या विचार का थोड़ा भी साथ या चिंतन नर्क में डालने वाला होता है ।

आचार्य महाप्रज्ञ –

प्रेक्षाध्यान का सूत्र है – ‘ रहें भीतर जियें बाहर ’ यह सू.त्र एक नई जीवनशैली का निर्माण कर सकता है । हमारी यह नई जीवनशैली इस प्रकार की होगी कि चौबीस धंटे पदार्थ का उपयोग करते हुए भी चेतना के साथ रहेंगे । चौबीस धंटे न भी हो सके तो पॉच –सात धंटे अपनी चेतना के साथ रहने का अभ्यास तो अवश्य ही करें । चेतना के साथ रहने वाला कभी आसक्त नहीं बनता ,बंधन में बंधा नहीं रहता । मोह एवं आसक्ति हमारे से बंधी नहीं हुई है बल्कि हम उसे छोड़ने को तैयार नहीं है ।

हम बंधे नहीं ,आसक्त न बने । पदार्थ के प्रति आसक्ति न हो इस प्रकार की चेतना तभी बन सकती है ,जब यह विवेक जाग जाए की मुझे सुखी रहने के लिए चेतना के साथ रहना है । चेतना के साथ जो रहता है ,वह दुःख तनाव ,समस्या आदि से मुक्त रहता है । इस प्रकार की जीवनशैली बने तो आनंद का जीवन जीया जा सकता है ।

महात्मा बुद्ध–

विषय रस में अशुभ देखते हुए विहार करने वाले , इंद्रियों में संयत , भोजन में मात्रा जानने वाले ,श्रद्धावान और उद्यमी पुरूष को मार (काम देव)वैसे ही नहीं डिगाता जैसे आंधी शैल पर्वत को ।

श्रद्धा एवं शील से सम्पन्न ,यश और भोग की इच्छा से मुक्त पुरूष जहां कहीं भी जाता है, सर्वत्र पूजीत होता है ।

आलस्य रहित हो , एकान्त सेवन में सुख महसूस करें ।

जो व्यक्ति जाग्रत होता है उसको अनन्त समय उपालब्ध होता है । धर्म में रमण करने वाले, धर्म में रत ,धर्म का चिन्तन करने वाले और अनुसरण करने वाले भिक्षु धर्म से च्युत नहीं होता ।

यदि सन्यास लेना है तो भलि–भॉंति लें ,उसमें दृढ़ पराकम के साथ लग जावें । ढीला –ढाला सन्यास बहुत धूल बिखेरता है । सन्यासी ध्यान, शांति , धैर्य एवं श्रद्धा से रक्षित होना चाहिए।
पहले यह स्वीकार करो की जीवन केवल दुःख है ।
भगवान महावीर –

जो खोया ही खोया है वह असाधू है जो हमेशा जागा है वह साधू है । –

लाओत्सू –

कोई मुझे नहीं हरा सकता क्योंकि मैं जीतना ही नहीं चाहता ।

रविन्द्रनाथ टेगौर –

मैं ईश्वर को खोजता था ,जन्मों –जन्मों से ।
कभी दूर किसी तारे के पास उसकी झलक मुझे दिखाई पड़ी और मैं भागा ।
लेंकिन जब तक तारे तक पहुंचता , तबतक ईश्वर आगे निकल चुका था ।
कभी दूर सूर्य के पास उसका स्वर्णरथ चमकता हुआ दिखाई पड़ा ।
लेकिन जब तक मैं पहूंचू तब तक वह दूर निकल चुका था ।
ऐसा बार –बार होता रहा और मैं चूकता रहा और चूकता रहा ।
और फिर एक दिन अनहोनी घटी ।
मैं उस दरवाजे पर पहूंच गया जहां पर तख्ती लगी थी कि यहां परमात्मा रहता है ,
मेरे आनन्द की कल्पना करो । दौड़कर सीढ़ीयां चढ़गया ।
कुंड़ी हाथ में लेकर बजाने ही जा रहा था ,तभी एक खयाल उठा ,कि अगर सच में ही ,द्वार खुल गया और ईश्वर मुझे मिल गया , तो फिर मैं क्या करुंगा ?
खोज ही तो मेरी जिन्दगी है । तलाश ही तो मेरा मजा है ।
इसी तरह तो मैं जन्मो –जन्मों जिया हूं –खोजता हूआ ।

अगर ईश्वर मिल ही गया और उसने गले लगालिया ,फिर ,फिर करने को कुछ भी नहीं बचेगा। और यह बात इतनी घबराने वाली मालूम पड़ी की फिर करने को कुछ न बचेगा ,कुछ भी नहीं , क्योंकि ईश्वर को पालेने के बाद और क्या पाने को बचता है ।
मैंने सांकल धीरे से छोड़ी कि कहीं बज न जाए , और जूते पैर से निकाल लिए कि सीढ़ियों से उतरूंगा तो कहीं आवाज जूतों कि चरमराहट से परमात्मा दरवाजा खोल ही न दे ।
फिर जूते हाथ में लेकर जो मै। भागा हूं ,वहां से तो फिर मेंने पीछे लौटकर नहीं देखा और अब मैं फिर ईश्वर को खोजता हूं । और मुझे अब पता है कि ईश्वर कहां रहता है ।
सिर्फ उस जगह को छोड़कर खोजता हूं ।

।

अन्य संतो के प्रवचन –

मन, मुख, आचरण में एकताहोने पर ही हमारे वाकय दूसरों का हृदय स्पर्श करते है । जबतक मन की सारी वृत्तियां निरुद्ध होकर मानव निर्विकल्प अवस्था में नहीं पहुंच जाता तथा अद्वेत भाव में अधिष्ठित नहीं होता तब तक चिर शांति का अधिकारी नहीं बन जाता । जीवन मुक्त पुरूषों के पुन्य जो लोग उनसे प्रेम करते है , सेवा करते है वे भोगते है । एवं पाप जो उनसे द्वेष करते है । वे भोगते है । वे स्वयं पाप एवं पुण्य से मुक्त रहते है ।

मूर्ति के विर्सजन से पूर्व ध्यान करें की उसमें से दिव्य ज्योति निकलकर तुम्हारे हृदय में समा गई है फिर विसर्जन करें ।

वैराग्य रुपी पूंजी का संग्रह किये बिना जो भव सागर के पार जाने के लिए अग्रसर होते है , वासना रुपी मगर उरनके कुंधो को पकड़कर पूनः बलपूर्वक अथाह जल में डुबो देता है ।

मानव पंचेन्द्रिय तथा मन –बुद्वि की सहायता से जो कुछ देखता–सुनता या चिंतन करता है उनके भीतरी उसका कुछ भी विद्यमान नही है । इस प्रकार के अनुभव को ही शास्त्रों में नेति –नेति कहा गया है ।

कठिन आसन पर ध्यान सीखना प्रारम्भ करने पर पैरों में दर्द होता है । जिससे उनका अनभ्यस्त मन ईशवर में संलग्न न होकर शरीर की और झुकने लगता है । तदन्तर ज्यो–ज्यों ध्यान जमने लगता है त्यों –त्यों कठिन आसन पर ध्यान करना चाहिए अन्त में केवल चर्मासन एवं खाली जमीन पर ध्यान करते है ।

स्वामी विवेकानन्द का ध्यान ही जीवन था । खाते –पीते , सोते – उठते , समय ईश्वर ध्यान की और अपने मन को संलग्न रखते थे । उनके मन का कुछ अंश सदा ईश्वर चिन्तन में संयुक्त रहता था ।

जब गंदी नाली का जल एवं गंगा जल एक प्रतीत होगा और इस प्रकार के ज्ञान का उदय होगा कि दोनों ही समानरुप से पवित्र है तभी ईश्वर प्राप्;त होगी संसार में एक सच्चिदानन्दमय ब्रह्मवस्तु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

एक सन्यासी की पुस्तक में केवल ऊँ राम लिखा था उसने कहा अनेक ग्रन्थों को पढ़ने से लाभ ही क्या है एक भगवान से ही तो वेद पुराण एवं अन्य शास्त्रों का उदभव हुआ है। उनमें तथा उनके नाम में कोई भेद नहीं है । अतः चार वेद, अठारह पुराण तथा अन्य शास्त्रों में जो है उनके एक नाम में वही विद्यमान है इसलिए उनके नाम का ही आश्रय लेकर रहो ।

हरि नाम लेते ही श्री चेतन्यदेव की ब्रह्मचेतना एकदम विलुप्त हो जाया करती थी ।

केवल अध्ययन द्वारा ठीक–ठाक ज्ञान की प्राति सम्भव नहीं है । कुछ दिन साधना आदि का अनुसंधान कर शास्त्र में जो कुछ कहा है । उसे प्रत्यक्ष करने का प्रयास भी आवश्यक है ।

जब तक सत्य लाभ न होगा तब तक हम एक आसन पर बैठकर धान –धारणादि करते रहेंगे इससे शरीर चले ही चला जाए । निम्न से उच्च तथा उच्चतर भूमि में ज्यों – ज्यों मन आरुढ़ होता है । त्यों –त्यों अपूर्व से भी अपूर्व अनुभव एवं दर्शनआदि प्राप्त होते रहते है और अन्त में निर्विकल्प समाधि आकर उपस्थित हो जाती है ।

मुण्ड्कोपनिषद– यह आत्मा वदों के अध्ययन से नहीं मिलता है ,न मेधा की बारिकी या बहुत अधिक शास्त्र सुनने से मिलता है । यह आत्मा जिस व्यक्ति का वरण करता है ,उसी को इसकी प्राप्ति होती है

योग – यम ,नियम(अहिंसा , सत्य , अस्तेय –चोरी न करना , ब्रह्मचर्य , अपरिग्रह – संग्रह न करना) , आसन(एक ही अवस्था में लंबे समय रहने का अभ्यास) , प्राणायाम, प्रत्याहार (अनावश्यक विचार या बुरी आदतें छोड़ना) , धारणा(मैं वही हूं में विश्वास) , ध्यान (निर्विचार होना),समाधी (निर्विचार अवस्था अर्थात ध्यान में जब व्यक्ति समष्टि या परमात्मा में खो जाता है उसे स्वयं के होने का भी अहसास न रहे ।)

इंद्रियां – नैत्र , श्रवण , त्वचा , नासिका , रसना , मन

पूजन सामग्री – गंध (इत्र), पुष्प , धूप , दीप , नैवेद्य(भोजन ,फल आदि) , आचमन , तांबूल (पान) आदि प्रमुख है ।

निंदक – यथारोगी , दरिद्र , वृत्ति से वंचित , शोकार्त , राजदंडित , शठ , खल (मूर्ख) , उन्मत्त , ईर्ष्यापारायण , कामी ।

पूजनीय – अध्यापक , पिता , ज्येष्ठ भ्राता , राजा , मामा , ससुर , नाना , दादा , अपने से बड़ी उम्र का कुटुम्बी जैसे चाचा , ताऊ आदि

प्राणधारी पशुओं के विषय – बोलना , खाना–पीना , चलना , मलमूत्र विसर्जन , मैथुन

प्राणियों के विकार –काम , कोध , लोभ, मोह ,मद , ईर्ष्या , हर्ष , शोक , राग ,द्वेष और अहंकार

अष्टावक्र जी–

हे जनक, हर जन्म में तुमने धन कमाया, काम का भी भोग किया एवं धार्मिक कार्य भी किये पर इनसे तुम्हें कभी संतुष्टी नहीं हुई यदि इनमें सुख होता तो तुम्हें शांति प्राप्त हो जाती।

विपत्ती एवं सम्पत्ति दैवयोग से ही समय पर आती–जाती है। जो व्यक्ति यह जान जाता है वह संतुष्ट रहता है और उसकी इंद्रियां स्वस्थ रहती है। वह न कामना करता है और न ही शोक करता है।

मित्र, खेत, धन, मकान, स्त्री, भाई एवं इन्द्रीय सुख ये सभी क्षणिक सुख महसूस कराते है। चिर शांति नहीं चिर शांति ही आनन्द है। वही परमानन्द तक पहूंचने का मार्ग है । चित्त में विचारों का प्रवाह रुकते ही चिर शांति स्थापित होजाती है। शरीर, मन, वाणी, एवं विचारों का प्रवाह रुकते ही शांति एवं आनन्द स्थापित हो जाता है।

जिसने आत्मा को जानलिया उसने परमात्मा को जानलिया ,परमात्मा आत्माओं में श्रेष्ठ है। आत्माज्ञानी सदैव यह महसूस करता है सब कुछ वही है या वह है ही नहीं।

संसार में लोग आत्मा को जानने के लिए अनेक प्रकार के अभ्यास जैसे ः– योग, साधना, सन्यास आदि करते है। पर ये लोग असफल रहते है क्योंकि इन अभ्यासों से अहंकार बढ़ता है और चित्त की वृत्तियां शांत होने के बजाय विद्रोह करती है। अभ्यास से वृत्तियां और दृढ़ हो जाती है। जिससे अभ्यास भी बंधन बन जाता है। इससे व्यक्ति को शुद्ध, बुद्ध, प्रिय, पूर्ण, प्रपंचरहित, दुःख रहित आत्मा को जानने में व्यवधान होता है।

हे राजन, अहंकार छोड़ो और अपना मन मुट्ठी में पकड़ो। यह मन न तो भोगने से शांत होता है और न ही विषयों को त्यागने से, यह तो मनन छोड़ने से शांत होता है। आत्मज्ञानी न तो सिद्वान्तों में जीता है और न ही आदतों में वह स्वभाव रहित हो जाता है। वह यह भी चिंतन नहीं करता कि विषय भोग की इच्छा समाप्त हुई या नहीं।

शास्त्रीय ज्ञान ,जप,तप योग आदि मनुष्य की आत्मज्ञान प्राप्ति में योग्यता बढ़ाने में सहायक होते है । पर जब आत्म ज्ञान प्राप्ति का अवसर आता है तो इनका कोई उपयोग नहीं होता है । ज्ञान के समय एवं उसके पश्चात इनको छोड़ना जरूरी होता है। केवल बोध ही आत्मज्ञान में सहायक होता है । परन्तु शास्त्रीय ज्ञान एवं कर्मकाण्ड को यदि आत्मज्ञान प्राप्ति में अनुपयोगी मानकर समाप्त करदिया जाए तो ब्राह्मण बेरोजगार हो जाएंगे एवं सामाजिक आचार–विचार पर उनका नियंत्रण समाप्त हो जाएगा और सामाजिक व्यवस्था चरमरा जाएगी।

यह संसार अपनी गति से चल रहा है और हम सभी निमित्त मात्र है। जो हो रहा है उसका नियंता कोई ओर है अतः अपने को कर्ता या दोषी मानकर कभी विचलित न हो । गाय जिस प्रकार हजारों बछड़ों में से अपना बछड़ा पहचान कर दूध पिलाती है उसी प्रकार भाग्य भी हजारों लोगों में से व्यक्ति को पहचान कर उसे उसी स्थान पर प्रारब्धानुसार अच्छा या बुरा फल समय पर प्रदान करता है।

हे राजन आत्म ज्ञान की पात्रता के लिए अहंकार से मुक्ति, पूर्ण सर्मपण (गुरू एवं उपदेश के प्रति) शरीर और मन के भावों की मुक्ति, शास्त्र एवं अन्य प्रकार के ज्ञान से मुक्ति और सभी प्रकार के ब्रह्म उपादानों से मुक्ति आवश्यक है।

आत्मज्ञानी अपने स्वभाव में ही स्थित रहता है। उसे बदलने का प्रयास नहीं करता ,उसके अनुसार सहज कर्म कर लेता है।

अन्य उपदेश –

ईश्वर या मोक्ष प्राप्ति के उपाय –तप

तप का महत्व – श्रम, संयम एवं त्याग ही तप है, जिसके माध्यम पापों का नाश होता है , शरीर स्वस्थ रहता है एवं परोपकार भाव एवं ईश्वर प्रेम को प्रबल कर व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है । आत्मा में तेजस्विता ,सामर्थ , एवं चैतन्यता उत्पन्न करने के लिए तप आवश्यक है । तप की गर्मी से अनात्मतत्वों का संहार होता है । प्रकृति भी दण्ड के रूप में बलात तप(श्रम,संयम एवं त्याग आदि) कराके हमारी शुद्धि करती है । बेहतर होगा कि उस प्रणाली को हम स्वयं ही अपनाएँ अपने गुप्त प्रकट पापों का दण्ड स्वंय ही अपने को देकर स्वेच्छापूर्वक तप करें , तो वह दूसरों या प्रकृति द्वारा बलात कराए हुए तप की अपेक्षा असंख्यगुना बेहतर है । उसमें न अपमान होता है , न प्रतिहिंसा , न आत्मग्लानि से चित्त क्षोभित होता है । वरन स्वच्छा तप से एक आध्यात्मिक आनन्द आता है और इससे उत्पन्न उष्मा और प्रकाश से दैवि –तत्वों का विकास ,पोषण एवं अभिवद्धन होता है । जिसके कारण साधक तपस्वी, मनस्वी और तेजस्वी बन जाता है । हमारे धर्म शास्त्रों में पग–पग पर व्रत, उपवास , दान , स्नान , आचरण आदि विधि –विधान इसी दृष्टि से किये गए है । उन्हें अपनाकर मनुष्य इन दूहरे लाभों को उठा सके ।
रामचरित्र मानस – तपबल रचइ प्रपंच विधाता । तपबल विष्णु सकल जग त्राता ।।
तपबल संभू करहि संघारा । तपबल सेषु धरइ महिभारा ।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी । करहि जाइ तपु अस जियँ जानी ।।

मनुष्य के शरीर में पाँच प्रकार के कोष बताए गए है जिनकी वृद्धि एवं शुद्धि आवश्यक है । जिससे परम लक्ष्य चाहे भक्ति हो या मोक्ष प्राप्ति में आसानी होती है । ये साधन भी तप की श्रेणी में आते है । –

1– अन्नमय कोष, यह शरीराभ्यास का प्रतीक है – आसन (सर्वांगासन, बद्धपदमासन , पादहस्तासन, उत्कटासन, पश्चिमोत्तानआसन , मयुरासन, सर्पासन, धनुरासन, आदि प्रमुख आसन है), उपावास , तत्वशुद्धि(जल–पर्याप्त मात्रा में जल पीना चाहिए , अग्नि– सूर्य के प्रकाश का भी प्रतिदिन सेवन करना चाहिए , वायू –प्रातः काल की वायू में ऑक्सीजन अधिक होता है उसका सेवन करो , आकाश – सात्त्विक विचार एवं ध्यान करना चाहिए , एवं भूमि तत्व की शुद्धि–नंगे पॉव भूमि पर टहलना ,भूमि की मिट्टी को गिला करके उसपर पाँव रखकर बैठना , भूमि पर सोना आदि) , और तप से अन्नमय कोष की वृद्धि होती है । हमारा भौतिक शरीर इसका प्रतिनिधित्व करता है ।

2 – प्राणमय कोश, यह गुणों को धारण करता है – बन्ध , मुद्रा , स्वरों का संयम और प्राणायाम द्वारा प्राणमय कोश की वृद्धि होती है । इनका आगे विस्तार से वर्णन किया गया है ।

3 – मनोमय कोश –मन एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियों से इसका निर्माण होता है । यह विचार शक्ति का धारक है – ध्यान , त्राटक , तन्मात्रा साधना ,और जप द्वारा मनोमय कोश की वृद्धि की जाती है । इन साधनों का आगे विस्तार से वर्णन किया गया है ।

4 – विज्ञानमय कोश – बुद्धि एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियों से इस का निर्माण होता है । यह अनुभवों को धारण करता है – सोऽहमं साधना (श्वास लेते समय सो एवं छोडते समय अहम का उच्चारण करना एवं समस्त प्रकृति को अपने में महसूस करना) आत्मानूभूति (एक ही आत्मा या स्वयं को सभी में महसूस करना), स्वरों का संयम और ग्रंथी भेद (कुण्डली जागरण द्वारा षट चक्रों का भेदन करना) द्वारा विज्ञानमय कोश की वृद्धि होती है ।

मनोमय कोष एवं विज्ञान मय कोष मिलकर सुक्ष्म शरीर का निमार्ण करते है ।

5 – आनंदमय कोश – यह सत या परमानंद का क्षैत्र है – नाद(कान बंद करके ओम की ध्वनी सुनने का अभ्यास) , बिंदू (ब्रह्मचर्य का अभ्यास) , कला(शरीर के विभिन्न चक्रों पर ध्यान केन्द्रित करना जिसे कुण्ड़लीजागरण भी कहते है ।) साधना , एवं तुरीय अवस्था (र्निविचार या समाधी की अवस्था) की साधना से आनन्द मय कोश की शुद्धि एवं वृद्धि होती है । आनन्दमय कोश अविद्या या सुसुप्ति की अवस्था होती है और इसे ही कारण शरीर कहा जाता है ।

आत्मा इन पाँचों कोशों से अलग होती है ।

उपरोक्त पॉचों कोशों का सम्बन्ध शरीर, प्राण , मन, बुद्धि, अविद्या ,आदि से है । इन कोशें की शुद्धि एवं वृद्धि के जो उपाय या साधन बताए गए है, उन तपरूपी साधनों को हम अपने जीवन में अपना कर अपना परम लक्ष्य चाहे वह मानसिक एवं शारिरिक स्वास्थ्य हो , चाहे आत्मदर्शन या ईश्वर साक्षात्कार हो आसानी से प्राप्त कर सकते हैं ।

गीता में कहा है –शरीर में इन्द्रीयों से उपर मन ,मन से उपर बुद्धि , बुद्धि से उपर आत्मा होति है जो कि उस परम पिता परमात्मा का अंश है । शरीर ,मन ,एवं बुद्धि केवल आत्मा के बाहरी आवरण है । इन सभी का नीचे विस्तार से वर्णन किया जा रहा है । –

1 आत्मा – यह सर्वव्यापी (एक ही आत्मा सभी में व्याप्त है) अविनाशी (आत्मा को अग्नि जला नहीं सकती ,जल गीला नहीं कर सकता , वायू सुखा नहीं सकती ,शस्त्र काट नहीं सकते) ज्ञान स्वरूप (काम, क्रोध ,मद, लोभ ,मोह , ईर्ष्या , जो कि मन के धर्म है से रहित) निर्द्वन्द (भूख , प्यास , सर्दि ,गर्मि जो कि प्राण के धर्म है से रहित) सर्वधिसाक्षीभूत (सोच–विचार, संकल्प–विकल्प , जो कि मन के धर्म है एवं निर्णय करना जो कि बुद्धि का धर्म है से रहित है अर्थात मन,बुद्धि,एवं इन्द्रियों के कार्यो की केवल साक्षी अर्थात दर्शक है) निसंग (नितांत अकेली – माता –पिता , पुत्र, स्त्री मित्र सभी रिश्तों से रहित) निष्क्रिय (सभी कार्य सभी प्रकार से प्रकृतिकृत है ,अतः किया भाव से रहित है) निष्काम (सभी प्रकार की इच्छाओं एवं कामनाओं से रहित) निराकार (सभी योनियों में समान भाव से स्थित) ,निर्भय (सभी प्रकार के भयों का अभाव) है । आत्मानुभव का एक मात्र साधन ध्यान है जिससे समाधी प्राप्त कर आत्मानुभव का लाभ प्राप्त होता है अतः आत्मानुभव के लिए समाधी ही एक मात्र माध्यम है । नाद , बिंदू , कला साधना एवं ध्यान आदि का परम लक्ष्य समाधी ही है ।

नाद –कान बंद करके ओम की ध्वनी सुनने का अभ्यास ।

बिंदू – ब्रह्मचर्य का अभ्यास ।

कला साधना –शरीर के विभिन्न चक्रों पर ध्यान केन्द्रित करना जिसे कुण्डलीजागरण भी कहते है ।

ध्यान –यह सविकल्प एवं र्निविकल्प दोनों प्रकार का होता है । सविकल्प में किसी वस्तु या ईश्वर का ध्यान करते है और र्निविकल्प में केवल र्निविचार अवस्था होती है । ध्यान ही परिपक्व होकर समाधी बनता है ।

समाधी – समाधियॉं 27 प्रकार की बताई गई है, जिनमें प्रमुख काष्ठ समाधी – मूर्छा , नशा , क्लोरोफार्म आदि सूँघने से आई समाधी , भाव समाधी – किसी भावना का इतना अतिरेक हो जाए कि मनुष्य की शारीरिक चेष्टाएं संज्ञाशुन्य हो जाए , ध्यान समाधी – ध्यान में इतनी तन्मयता आजाए कि उसे अदृश्य एवं निराकार सत्ता साकार दिखाई पडने लगे ,इष्टदेव के दर्शन इसी अवस्था में होते है । इसमें यह अन्तर विदित नहीं होता कि हम ध्यान में दर्शन कर रहें है या प्रत्यक्ष नेत्रों से ही देख रहें है ।, प्राण समाधी – ब्रह्मरन्ध्र में प्राणें को एकत्रित करके की जाती है। हठ्योगी इसी समाधी द्वारा शरीर को बहुत समय तक मृत बनाकर जीवित रहते है।,ब्रह्म समाधी–इस अवस्था में अपने आपको ब्रह्म में लीन होने का बोध होताहै ।

सहज समाधी – यह सर्व सुलभ है। इसमें व्यक्ति भगवान की शरणागत होकर अपने सभी कार्य उनकी आज्ञापालन एवं निष्काम भाव से करता है , भोग एवं तृष्णा की क्षुद्र वृत्तियों का परित्याग कर देते है । उनके सभी कार्य दैवी प्रेरणा पर निर्भर रहते है इसलिए उनके समस्त कार्य पुण्य बन जाते है । वे सभी प्राणीयों को ईश्वर का अंश मानकर सदैव उनकी सेवा एवं परोपकार में लगे रहते है । भोजन करने में उनकी भावना रहती है कि प्रभू कि एक पवित्र धरोहर शरीर को यथावत रखने के लिए भोजन किया जा रहा है, खाद्य पदार्थों का चुनाव करते समय शरीर की स्वस्थता उसका ध्येय रहती है स्वादों के चटोरेपन के बारे में वह सोचता तक नहीं कुटुम्ब को भी वह अपनी सम्पत्ति नहीं मानता उसे वह परमात्मा की सुरम्य वाटिका के माली की भांति देखभाल करता है । जीविकोपार्जन को वह आवश्यकतापूर्ति का एक पुनित साधनमात्र समझता है अमीर बनने की तृष्णा उसमें नहीं होती ।

2 प्राण – प्राण शक्ति एवं सामर्थ्य का प्रतीक है । विद्या, चतुराई ,अनुभव,दूरदर्शिता, साहस , लगन, शौर्य , जीवनशक्ति , ओज पराकम, पुरूषार्थ, महानता आदि नामों से इस शक्ति का परिचय मिलता है । जिसमें स्वल्प प्राण है उसे जीवित मृतक कहा जाता है । प्राण द्वारा ही श्रद्धा , निष्ठा, दृढता, एकाग्रता और भावना प्राप्त होती है ,जो भव–बंधन को काटकर आत्मा को परमात्मा से मिलाती है । आत्मा बलहीनों को प्राप्त नहीं होती है । दीर्ध जीवन, उत्तम स्वास्थ्य , चैतन्यता, स्फूर्ति , उत्साह, कियाशीलता, कष्ट सहिष्णुता, बुद्धि की सूक्ष्मता, सुन्दरता, मनमोहकता आदि विशेषताएं प्राण शक्ति पर ही निर्भर होती है ।

प्राण तत्व का वायू से विशेष संबंध है । सॉंस को ठीक तरीके से न लेने पर प्राण की मात्रा का धटना और बढना निर्भर करता है । सॉंस सदा पूरी लेनी चाहिए तथ झुककर कभी नहीं बैठना चाहिए । नाभि तक पूरी सॉंस लेने से एक प्रकार का कुम्भक हो जाता है । ।इसके अतिरिक्त व्यायाम, गायन, नृत्य आदि भी सभी अंगों में वायू का संचार कर प्राण शक्ति में वृद्धि करते हैं । वायू या प्राण से ही हदय की धडकन चलती है और सारे शरीर में वायू का संचार होता है । मनुष्य शरीर में दस प्रकार के प्राणों का निवास है पॉच को महाप्राण जो कमशः प्राण ,अपान, समान, उदान, व्यान एवं पॉच लघु प्राण जो कमश : नाग , कुर्म , कृकल, देवदत्त , धनन्जय है ।

प्रत्येक प्राणी की श्वास प्रारब्ध के अनुसार निर्धारित है जो जितनी होशियारी से खर्च करेगा उतना अधिक जीवित रहेगा । खरगोश ,मनुष्य ,सॉप,कछुआ कमशः 38 , 13 , 8 , 5 बार श्वास लेते है तो उनकी पूर्ण आयू लगभग कमश : 8, 120, 1000, 2000 वर्ष मानी गई है । साधारण काम –काज में 12 बार, दौड –धूप करने में 18 बार ,और मैथुन करने में 36 बार प्रति मिनिट के हिसाब से श्वास चलती है ।

प्राणों के लिए बन्ध ,मुद्रा ,स्वरों का संयम और प्राणायाम उचित तप है ।

बन्ध –तीन प्रकार के प्रमुख बंध होते है । मूलबंध – गुदा के छिद्र को उपर की और सिकोडना , जालंधर बंध – मस्तक को झुकाकर ठेडी को कण्ठकूप में लगाना , उडडियान बंध – पेट में स्थित आँतों को पीठ की ओर खींचना । ये सभी बंध प्राणायाम के समय बहुत उपयोगी होते है ।

मुद्रा – महामुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा अर्थात शिर्षासन , योनिमुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, भुचरीमुद्रा आदि प्रमुख मुदाएं है ।

स्वरों का संयम –नाक से सॉस लेते एवं छोड़ते समय तीन प्रकार के स्वर चलते है । उनको अपने लाभ के हिसाब से चलाना या नियंत्रित करना ही स्वरों का संयम है ।सोते समय करवट बदल कर या अँगुली से छेद को कुछ समय बंद करके भी स्वर को बदला जा सकता है ।

1– चंद्र स्वर – यह नाक के बायें छेद से चलता है । इसे दिन में चलाना श्रेष्ठ रहता है । इसमें दान देना , धरसे बाहर जाना , सभी शुभ कार्य, पूजन , विवाह , विद्यारम्भ , मृत्यू , रोग चिकित्सा , औषध निमार्ण , कृषिकार्य , दीक्षा ग्रहण करना , दूसरों पर उपकार, संपत्ति संग्रह, नृत्य–गायन , तिलक लगाना , स्वामी दर्शन , पशु क्रय , इस स्वर के चलने पर यात्रा के लिए बाँयां पाँव आगे रखे एवं बायें हाथ से लेन – देन करें । प्रातः बायें हाथ से मुख स्पर्श करें , लाभ देने वाले लोगों के बायीं और बैठें ।

2– सूर्य स्वर – यह नाक के दाहिने छेद के चलता है । इसे रात में चलाये । इसमें क्रूर कार्य , धर में प्रवेश , सूक्ष्म और कठिन विषयों का ज्ञान , युद्ध करना , पर्वत चढना, वाहन पर चढना , व्यायाम करना , दवा लेना , क्रय–विक्रय करना , राजा का दर्शन करना , भोजन, स्नान, गमन, पशु–विक्रय, आदि कार्य करें । इस स्वर के समय यात्रा के लिए दाहिना पॉव आगे निकालें , दाहिने हाथ से लेन–देन करें , प्रातः दाहिने हाथ से मुख का स्पर्श करें एवं लाभ देने वालों के दाहिनी और बैठें ।

सुषम्ना नाड़ी – इसमें दोनों स्वर एक साथ या रूक –रूक कर चलते है । भोग और मोक्षदायक कार्य ,ईश्वर चिंतन, योगाभ्यास आदि इसमें करते है ।

प्राणायाम – लोम–विलोम प्राणायाम , सूर्य –भेदन प्राणायाम , उज्जायी प्राणायाम , शीतकारी प्राणायाम , शीतली प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम , मूर्छा प्राणायाम, प्लापिनि प्राणायाम,आदि प्रमुख प्राणायाम है। इनका वर्णन गायत्री महाविज्ञान पुस्तक –पं श्री राम शर्मा आचार्य पुस्तक में है।

प्राण शक्ति या जीवन शक्ति कम होने के कारण :– 1. दुर्बल जीवन शक्ति वाले लोगों के संपर्क से । 2. तिरस्कार व निंदा के शब्द बोलने से । 3. अधिक लोगों के संपर्क से । 4. दूरदर्शन , रेडियो एवं अखबार आदि में चोरी, दुर्धटना आदि बुरि खबरों, उत्तेजित विज्ञापनों , क्रूर लोगों के चित्र या जीवन चरित्र को देखने ,सुनने या को पढ़ने से। 5. कृत्रिम धागों के वस्त्र पहनना जैसे : टेरीलीन, पेलिस्टर , आदि । 6. प्लास्टिक की चीजों का अधिक उपयोग । 7. रंगीन चश्मा, इलेक्ट्रिक घड़ी, सेंट(कृत्रिम)आदि काम में लेना 8. ऊची एड़ी के सैंडिल या जूतों के उपयोग से 9.अधिक गर्म या अधिक ठण्डी वस्तू खाने या बर्फ के पानी पीने से । 10. ट्यूबलाईट को देखने से । 11. बीड़ी –सिगरेट , तमाकू , शराब आदि के उपयोग से 12. विकीरण पैदा करने वाली मशीनों के पास रहना जैसे एक्सरे मशीन, फोटोकॉपी मशीन , मोबाईल, कम्प्यूटर टेलिविजन आदि । 13. शक्कर या उससे बनी वस्तुएं खाना या उनका थोड़ासा भी उपयोग करना । 14. अधिक नमक , ब्रेड़,मिठाई , बिस्कुट , तला भोजन , आदि का प्रयोग करना । 15. मैथुन अधिक करने से ।

प्राण शक्ति या जीवन शक्ति बढाने के उपाय – 1. प्रिय काव्य , भजन , गीत , आदि का वाचन पठन , आदि करना । 2 . चलते समय दोनों हाथ आगे –पीछे हिलाना 3. जिव्हा का अग्रभाग तालुस्थान में दाँतों से करीब आधा से. मी. पीछे लगाकर रखें । 4. किसी प्रश्न के उत्तर में हाँ कहने के लिए सिर को आगे पीछे हिलाना 5. हँसने और मुस्कराते रहने से 6. हरि बोल या राधे – राधे कहते हुए हाथों को आकाश की और उठाने से। 7. हृदय में दिव्य प्रेम की धारा बहरही है ऐसी भावना करने से । 8. ईश्वर को धन्यवाद देने से । 9. स्वास्तिक के चित्र को पलक गिराए बिना एकटक निहारत हुंए त्राटक का अभ्यास करने से । 10. प्राकृतिक वस्त्र जैसे : रेशमी , ऊनी सूती पहनने से । 11. उत्साह युक्त , प्रेम युक्त वचन बोलने एवं सुनने से 12. रीढ की हड्डी सीधी रखने से । 13. पूर्व एवं दक्षिण दिशा में सिर रखकर सोने से । 14. पानी में तैरना या गिली मिट्टी में पाँव रखकर बैठने से । 15. तुलसी , रूद्राक्ष एवं सुवर्णमाला धारण करने से । 16. परोपकार का भाव विकसित करने से । 17. संतोष , कमसोचना, मानसिकएकाग्रता में वृद्धि से । 18. देवी–देवताओं एवं महान लोगों को चित्र देखने एवं उनके जीवन चरित्र पढ़ने से 19. सीधी – सपाट एवं कठोर कुर्सि पर बैठना एवं भूमि या तख्ते पर बिस्तर लगाकर सोने से 20. हल्के सात्विक भोजन केवल जोर की भूख लगने पर ही करने से । 21. प्रातः जल्दि उठना 22. ताजा पानी से स्नान करना । 23. योग, व्यायाम एवं यथासंभव पैदल अधिक चलने से । 24. स्वावलंबी बने एवं सुख–साधनों का न्यूनतम उपयोग करें । 25. यथासंभव ब्रह्मचर्य का पालन करने से ।

3 बुद्धि – निर्णय करने की शक्ति में बुद्धि का ही योगदान होता है , बुद्धि का मापदण्ड व्यक्ति का ज्ञान एवं अनुभव ही होता है और उसी के आधार पर वह निर्णय लेता है उसकी बुद्धि के द्वारा लिए गये निर्णय ही उसके लोक एवं परलोक सुधारने या बिगाडने के लिए जिम्मेदार होते है । कई बार बुद्धि तो उचित निर्णय दे देति है अर्थात सही या गलत का निर्णय कर देती है परन्तु संकल्पशक्ति के अभाव में , मन या इन्द्रीय सुख के वशीभूत होकर व्यक्ति उन निर्णयों को नहीं मानता । जब व्यक्ति गुरु ,शास्त्र श्रवण ,स्वाध्याय,चिंतन एवं सतसंग द्वारा ज्ञान प्राप्त कर अपनी बुद्धि का विकास करता है ,जिससे उसकी निर्णय शक्ति प्रबल होती है ।यही बुद्धि का तप है ।

स्वाध्याय का महत्व –ईश्वर के विभिन्न अवतारों द्वारा वेद, पुराण, गीता, रामायण आदि धर्मशास्त्रों में अपना निवास बताया है एवं इनके अध्ययन से प्राप्त होने वाले लाभों एवं पुण्यों का विस्तार से वर्णन भी किया है। इससे स्वाध्याय का महत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है। स्वाध्याय का सम्पूर्ण महत्व तो बताना किसी भी व्यक्ति के लिए असम्भव है, कुछ लाभ स्वाध्याय के बताए जा रहे है। जिनका उद्वेश्य है कि अधिक से अधिक लोग स्वाध्याय को अपने दैनिक जीवन में अपना कर अपने में सदगुणों का विकास एवं ज्ञान में वृद्धि करें एवं अपनी उपासना के परमलक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कर अपने जीवन को सफल बनावें ।

सदगुणों के विकास का साधन स्वाध्याय –शिक्षाप्रद एवं धार्मिक पूस्तको के अध्ययन से मनुष्य में दुर्गुणों का नाश होकर सभी सदगुणों का विकास होता है । वास्तव में सदगुणों से युक्त मनुष्य ही अपने जीवन में उन्नति कर अपने वास्तविक लक्ष्य एवं परमात्मा को भी
प्राप्त कर सकता है।

सभी उपासनाओ का प्रेरक एवं मार्गदर्शक स्वाध्याय – चाहे कर्मयोग हो , भक्ति योग हो अथवा ज्ञानयोग हो सभी उपासना पद्वतियों में स्वाध्याय प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में एक
महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गीता की पुस्तक हाथ में लेकर देशभक्त हँसते – हँसते शहीद हो गए, भक्त भी जब धार्मिक पुस्तक पढता है तो आनन्द विभोर हो उठता है । विभिन्न धार्मिक एवं संतों की पुस्तकों के माध्यम से योगी जन भी अपनी शंकाओं का समाधान एवं मार्गदर्शन प्राप्त कर
अपनी उपासना में प्रगति करते हैं। योग वशिष्ट जो कि योग के क्षैत्र में एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, में भी कई जगह स्वाध्याय को ध्यान एवं योग के क्षेत्र में प्रगति का एक महत्वपूर्ण साधन माना है।लोक मान्य तिलक ने तो गीता की पुस्तक पढते हुए बडा ही कष्टप्रद आपरेशन करवा लिया था जो इस बात का प्रतीक है कि पुस्तकों के अध्ययन में ऐसी तल्लीनता प्राप्त हो जाती है जो लंबी योग साधनाओं से भी प्राप्त नहीं होती है ।

सभी रोगों की दवा स्वाध्याय–लगभग सभी आम शारीरिक रोगों जैसे हृदय रोग, ब्लडप्रेशर, डाईबिटीज आदि में मानसिक तनाव को ही प्रमुख कारण माना गया है। वर्तमान शिक्षापद्धति, बढती प्रतिस्पर्धा की भावना, एवं आधुनिक जीवनशैली भी मानसिक रोगों में व' द्धि का एक प्रमुख कारण है। शिक्षाप्रद एवं धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय से मानसिक शांति, हृदय गति का संतुलित होना, जीवन की समस्याओं से बहादुरी से लडने की प्रेरणा , ईश्वर में विश्वास आदि बातों
से मानसिक तनाव को समाप्त करने में काफी योगदान प्राप्त होता है ।

साम्प्रदायिक सदभाव के विकास का माध्यम स्वाध्याय – आज विभिन्न धर्मो के अनुयायी अपने – अपने धर्म को श्रेष्ठ मानकर एवं दूसरों के धर्मो को नीचा मानकर आपस में लड रहें है । यदि सभी धर्मो का अध्ययन किया जाए तो यह भ्रातिं दूर हो जाती है एवं एक दूसरे
धर्म के प्रति आदर भाव विकसित होता है । उदाहरणार्थ यदि कोई भी मुस्लिम भाई जिसने कभी भी
कुरान का एक बार भी मन से अध्ययन किया हो वह दूसरे धर्म के अनुयायी को जान से मारना तो
दूर एक थप्पड भी मारना पसन्द नहीं करेगा । कुरान शरीफ में दया ,क्षमा , ईमानदारी , आदि अनेक गुणों पर बल दिया गया है । क्योंकि मुस्लिम समुदाय का एक बडा वर्ग अशिक्षित है और उन्हें धर्म के नाम पर जो भी सिखा दिया जाता है वे उस पर विश्वास कर उसे अमल में लातें है ।यही हाल हिन्दू एवं अन्य धर्मो का भी है जहां कट्टरपंथी धर्म के नाम पर कटुता का वातावरण पैदा कर रहें है, शिक्षा के प्रसार एवं स्वाध्याय के माध्यम से यह समस्या दूर हो सकती है ।

स्वाध्याय को आम जनता के दैनिक जीवन में शामिल करने की आवश्यकता–आप किसी भी समस्या या मानसिक तनाव में हो, तो किसी भी शिक्षाप्रद या धार्मिक पुस्तक का अध्ययन आपको तुरन्त मानसिक शान्ति एवं उस समस्या से मुकाबला करने की
प्रेरणा देगा । गीता का निष्काम कर्मयोग हो या भगवत शरणागति ये सभी उपाय मनुष्य को सभी

चिन्ताओं से मुक्त कर देतें है । आवश्यकता इस बात की है कि स्वाध्याय आम जनता को सुलभ हो
एवं उसका उनके दैनिक जीवन में उपयोग हो ।

शिक्षाप्रद, धार्मिक एवं दुर्लभ पुस्तकों एवं ग्रंथों का कम्प्युटरीकरण कर उन्हेंसुरक्षित करना एवं डी.वी.डी. या इन्टरनेट के माध्यम से लोगों को पढने एवं डाउनलोड करने के लिए उपलब्ध करवाना – आज लोगों के पास पुस्तकों को रखने
के लिए स्थान का अभाव है । पुरानी पुस्तकों को चूहों एवं दीमक से बचाना भी एक समस्या है ,
घर पर पढने के लिए समय का भी अभाव है । चूंकि कम्प्यूटरों का घर, दुकान, एवं ऑफिसों में प्रयोग बढ रहा है । सैंकडो पुस्तकें बहुत ही कम मैमोरी में डाउनलोड हो जाती है, अपना फालतू समय जो घर ऑफिस या दुकान में व्यर्थ की बातों में चला जाता है उसमें कुछ स्वाध्याय प्रतिदिन अवश्य किया जा सकता है। वैसे भी कहा गया है कि ' एक घडी आधी धडी आधी में पुनि आधि, तुलसी संगति साधु कि हरे कोटि अपराध ' स्वाध्याय भी सतसंग का ही एक रूप है । सतसंग में व्यक्ति के माध्यम से व्यक्ति मार्गदर्शन प्राप्त करता है, स्वाध्याय में पुस्तक माध्यम होती है । स्वाध्याय करना घर बैठे सतसंग करना ही है।

दुर्लभ ग्रन्थ भी कम्प्युटरीकरण के माध्यम से आने वाली पीढी के लिए सुरक्षित रह सकेंगे।कुछ लोगों द्वारा वेद, पुराण , गीता , रामायण, एवं अन्य ग्रन्थों एवं उत्क' ष्ट साहित्यिक सामग्री इन्टरनेट पर लोगों के पढनें एवं डाउनलोड करने के लिए विभिन्न धार्मिक एवं अन्य साईटों द्वारा उपलब्ध कराए गए है मैं उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हू वे वास्तव में साधूवाद के पात्र है । अभी भी उपनिषद , विभिन्न सहिंताएँ जो कि लुप्तप्राय हो गई है एवं अन्य दुर्लभग्रन्थें। का कम्प्युटरीकरण का कार्य अभी बाकी है । मेरा विद्वान लोगों से भी अनुरोध है कि यदि उनके पास कोई अच्छा एवं दुर्लभ ग्रन्थ या पुस्तक है तो उसे स्केन करा कर या अन्य माध्यम से कम्प्यूटरीकरण किया जाए फिर सी.डी., डी.वी.डी.या इन्टरनेट के माध्यम से लागों को उपलब्ध कराया जावे ।

स्वाध्याय का महत्व विभिन्न ग्रंथों में एवं विद्वानों की राय में–
'

शतपथ ब्राह्मण –जितना पुण्य धन–धान्य से पूर्ण इस प' थ्वी को दान देने से मिलता है उसका तीन गुणा पुण्य तथाउससे भी अधिक पुण्य स्वाध्याय करने वाले को मिलता है। 'ब्राह्मण का स्वाभाविक कर्म स्वाध्याय है, जिसदिन वह स्वाध्याय नहीं करता उसी दिन वह
ब्राह्मणत्व से पतित हो जाता है '

आचार्य श्री राम शर्मा – अच्छी पुस्तकें जीवन्त देव प्रतिमाएं है जो उपयोग करने पर तुरन्त प्रकाश एवं उल्लास प्रदान करती है । स्वाध्याय करना धर बैठे सतसंग करना ही है। सतसंग में माध्यम व्यक्ति होता है, स्वाध्याय में माध्यम पुस्तक होती है।

योग भाष्यकार व्यास – वेद शास्त्रों में श्रम का सबसे बडा महत्व है । हर एक को कुंछ न कुछ श्रम नित्य प्रति करना ही चाहिए, इस श्रम के क्षेत्र में स्वाध्याय ही सबसे बडा श्रम है। स्वाध्याय द्वारा परमात्मा में योग करना सीखा जाता है और समस्वरुप योग से स्वाध्याय किया जाता है योग पूर्वक स्वाध्याय से ही परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है। अपने आप को जानने के लिए स्वाध्याय से बढ कर अन्य कोई उपाय नहीं है। यहां तक कि इससे बढकर कोई पुण्य भी नहीं
है ।

श्री कृष्ण –जो सदा मन में सब प्राणियों पर प्रसन्न रहते है और मध्याह्न काल तक धर्म ग्रंथों का स्वाध्याय करते है उनकी मैं सदा पूजा करता हूं ।

महर्षि व्यास – हे मनुष्यों , उम्र बीत जाने पर भी यदि विद्या प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो तो तुम निश्चय ही बुद्धिमान हो । विद्या इस जीवन में फलवती न हुई तो भी दूसरे जन्मों में वह आपके लिए सुलभ बन जाएगी । स्वाध्याय युक्त साधना से ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है । '

गीता – इस संसार में ज्ञान से बढकर कोई श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है ।

महात्मा गांधी – स्वाध्याय से बढकर आनंद कुछ नहीं , मुझे नरक में भेज दो वहॉं भी स्वर्ग बना दूंगा , यदि मेरे पास अच्छी पुस्तकें हों।

योगवासिष्ठ –अविद्या का आधा भाग सतसंग से नष्ट हो जाता है , चौथाई भाग शास्त्रों के स्वाध्याय से एवं शेष चौथाई स्वंय के पुरुषार्थ सें नष्ट होता है ।

चिंतन– उसे निरंतर मृत्यू ,रोग, एवं वृद्धावस्था द्वारा जीवन के क्षय एवं अस्थिरता का चिन्तन करना चाहिए । संसार असार है ,वह केवल ईवर की लीला मात्र है , सभी भोग –विलास नर्क के द्वार है एक स्वप्न से अधिक संसार का कोई अस्तित्व नहीं है ।

ईश्वर सभी प्राणियों में विद्यमान है यह सदैव महसूस करें । मन की सभी कामनाओं एवं संकल्प –विकल्पों का त्याग कर प्रत्येक समय केवल ईश्वर का (नाम, रुप , लीला, स्वरुप, उपदेश एवं उनके गुण) निरंतर स्मर्ण करो । ईश्वर के भक्तों के गुणों एवं लीलाओं का स्मर्ण करो ।

भक्तों के प्रमुख गुण – समदर्शिता (सभी को समान समझना), सहिष्णुता (अपमान,कष्ट एवं कटुवचनों को सहना), अकिंचनता (संग्रह रहित रहना) अस्तेय (चोरी न करना), अनुसूयारहित (दूसरों में दोष न देखना) अहंकार(कर्तापन एवं श्रेष्ठता का) न होना ,निष्कामता (स्वार्थ एवं व्यर्थ चिन्तन रहित रहना), अहिंसा (मन, वचन एवं कर्म से किसी को कष्ट न देना),शांतस्वभाव (भयंकर विपरीत परिस्थितियों में भी) , क्षमा , दया , धैर्य , निर्भयता, अनासक्ति , विनम्रता , संयम, परोपकार ,संतोष ,उदारता , दानी, सबसे निस्वार्थ प्रेम,ज्ञानजिज्ञासू, सर्वदा प्रसन्न ,

आलस्य(सभी कार्यो में) न करना , एकान्तवासप्रियता, ईमानदारी, चुगली एवं निंदा न करना , सतसंग प्रियता (सदेव ईश्वर के नाम ,स्वाध्याय , संतो आदि का संग ।)आदि है ।

3 मन –स्मृति एवं सभी प्रकार के संकल्प –विकल्प करना मन का कार्य है । मन के सोच –विचार बंद होते ही व्यक्ति ध्यान की अवस्था में पहुंच जाता है और ध्यान परिपक्व होने पर स्वतः ही समाधी में बदल जाता है । समाधी ही आत्मानुभव का एक मात्र साधन है । आत्मानुभव का आंनद प्राप्त करने के पश्चात सभी सांसारिक इच्छाएं समाप्त हो जाती है , सभी सिद्धियां स्वतःसुलभ हो जाती है ,व्यक्ति अपने को उस परमात्मा अंश महसूस करने लगता है ।
मन के वश में करने के लिए एकांतसेवन, आसन , इंद्रियों का संयम ,भक्ति एवं ध्यान,त्राटक, तन्मात्रा साधना आदि प्रमुख साधन है । ये मन के प्रमुख तप है ।
एकांतसेवन – यथा संभव एकांत में रहो, वाद–विवाद से दूर रहो, विचारो से रहित रहो । उस समय ईश्वर का स्मर्ण , ध्यान या चिंतन कर सकते है ।
आसन – आसन के अभ्यास से एक ही अवस्था में लम्बे समय तक रहने के अभ्यास मानसिक एकाग्रता ,भूख –प्यास पर नियंत्रण , सर्दी –गर्मी आदि मौसन को बर्दाश्त करने की क्षमता , आदि अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती है जो हमारी साधना में बहुत उपयोगी होती है । (प्रमुख आसन – सर्वागांसन, बद्वपदमासन , पादहस्तासन, उत्कटासन, पश्चिमोत्तानआसन , मयुरासन, सर्पासन, धनुरासन, आदि प्रमूख आसन है)
इंद्रियों का संयम – दृढ संकल्प , स्वाध्याय , ईश्वर का स्मर्ण , ध्यान आदि साधनों से इन्द्रियों का संयम किया जा सकता है , जो कि प्रत्येक साधना में अत्यंत आवश्यक है ।
भक्ति –भगवान की शरणागति ,पूजा,नाम का जाप ,स्वरूप का ध्यान ,स्वाध्याय ,सतसंग आदि प्रमुख साधन है । जिनसे मन की एकाग्रता, ध्यान , समाधि , आत्मसाक्षात्कार एवं ईश्वर के दर्शन सभी कुछ प्राप्त हो जाता है । भक्ति मार्ग के अन्य साधन जो पार्पो का नाश करने वाले एवं स्वर्ग प्रदान करने वाले है जिनमें तीर्थयात्रा , व्रत , यज्ञ, दान, यम –नियम , तप , योग आदि है ।
भगवान की शरणागति– भगवान की शरणागति में भक्त अपने सभी हानी –लाभ ईश्वर के भरोसे छोड़ कर केवल निष्काम कर्म परोपकार के भाव से करता है जिससे उसके मन के सभी संकल्प– विकल्प,चिंता आदि समाप्त हो जाते है एवं मन में परम शांति एवं एकाग्रता का साम्राज्य स्थापित हो जाता है । भगवान की शरणागति ही सहज समाधी में परिवर्तित होकर आत्मसाक्षत्कार एवं ईश्वरदर्शन का माधम बन जाती है । पश्चिम मै इतना तनाव एवं चिंता है कि हर चार में से तीन आदमी विक्षिप्त हालत में है उसका कारण है वे केवल अपनी मर्जी से चलने का प्रयास करते है ।
नानक कहते है – उसके हुक्म , उसकी मर्जी के अनुसार चलो । जैसा उसने लिख रखा है वैसा चलो । उसके हुक्म और उसकी मर्जी के अनुसार सब उस पर छोड़ दो । जैसा वह जिलाए वैसा जियों , जैसा वह कराए वैसा करो , जहां वह लेजाए ,जाओ । उसका हुक्म ही तुम्हारी एक मात्र साधना हो । तुम अपनी मर्जी हटाओ उसकी मर्जी आने दो तुम इनकार मत करो । दुःख आये तो दुःख को भी स्वीकार कर लो और अहो भाव रखो , धन्य भाव रखो कि अगर उसने दुःख दिया है तो उसमें भी कोई राज होगा , कोई अर्थ होगा ,कोई रहस्य होगा। तुम शिकायत मत करो ,तुम धन्यवाद से ही भरे रहो । वह तुम्हें जैसा रखे गरीब तो गरीब , अमीर तो अमीर , सुख में तो सुख में दुःख में तो दुःख में एक बात तुम्हारे भीतर सतत बनी रहे कि मै राजी हूं तेरा हुक्म मैरा जीवन है । और तुम पाओगे कि तुम शांत होने लगे हो। जो लाख ध्यान मैं बैठकर नहीं होता था वह उसकी मर्जी पर सब छोड़ देने से होने लगा है और हो ही जाएगा क्योंकि चिंता का काई कारण नहीं रहा । चिंता क्या है ? जैसा हो रहा है उससे अन्यथा होना चाहिए था। बेटा मर गया , नहीं मरना चाहिए था पत्नि बिमार है नहीं होनी चाहिए थी । व्यापार में घाटा हो गया नहीं होना चाहिए था । पुलिस परेशान कर रही है नहीं करनी चाहिए थी । और जैसा नहीं हो रहा है वैसा होना चाहिए था । धन चाहिए , पु त्र, पत्नि सम्मान सभी होने चाहिए। इच्छाएं एवं चिंता ही ध्यान को विकृत करती है । तब तुम कैसे शांत हो सकोगे ।
जो लिखा है वही होगा, अपनी तरफ से कुछ भी करने का कोई उपाय नहीं है । कोई परिवर्तन नहीं हो सकता फिर चिंता किस बात की ?जब तुम बदलना ही नहीं चाहत कुछ , जब तुम उससे राजी हो , उसकी मर्जी में राजी हो जब तुम्हारी अपनी कोई मर्जी है ही नहीं तो कैसी बैचेनी ,तब कैसे विचार, तब सब हल्का हो जाता है ।पंख लगजाते है तब तुम आकाश में उड़ सकते हो , उसका एक ही सुत्र है परमात्मा की मर्जी ।
अपनी तरफ से तुमने बहुत कोशिश करके देख ली क्या हुआ तुम वैसे– के वैसे हो जैसा उसने भेजा उससे अपनी कोशिशों के कारण विकृत भले ही हो गए , सुकृत नहीं हुए । तुम्हारी कोशिश सिर्फ तनाव और चिंता ही देगी । समस्या हल न कर सकेगी । समस्या उसकी कृपा से ही हल होगी ।

नानक कहते है न जप ,न तप, न ध्यान , न धारणा एक ही साधना है उसकी मर्जी जैसे ही तूम्हें उसकी मर्जी का ख्याल आयेगा तुम पाओगे भीतर सब कुछ हल्का हो जाता है , एक गहन शांति, एक वर्षा होने लगती है ।
तुम तेरो मत बहो बहो , नदी ये लड़ो मत । नदी दुश्मन नहीं है मित्र है तुम बहो लड़ने से दुश्मनी या तनाव पैदा होता है । जब तुम उल्टी धार तैरने लगते हो नदी तुमसे संघर्ष करने लगती है । तुम सोचते हो नदी तुमसे दुश्मनी कर रही है । नदी को तुम्हारा पता भी नहीं है । तुम्हारी मर्जी यानी उल्टी धारा , अहंकार यानी उल्टी धारा । उसकी मर्जी तुम धारा के साथ एक हो गए । अब नदी जहाँ ले जाए वही तुम्हारी मंजील है , यदि डुबो दे तो भी वही मंजील है । फिर कैसी चिंता कैसा दुखः

अगर तुम लड़रहे हो परमात्मा से ,अगर तुम अपनी इच्छा पूरी कराना चाहते हो – चाहे प्रार्थना हो , पूजा से ही सही – अगर तुम्हारी अगर तुम्हारी अपनी इच्छा है तो तुम अधार्मिक हो उसकी आज्ञा से जो चलने लगेगा , जो अपनी इच्छा से हिलता –डुलता भी नहीं जिसका अपना कोई भाव नहीं , कोई चाह नहीं जो अपने को आरोपित नहीं करना चाहता । वह उसके हुक्म में आगया वहीं धार्मिक है । उसके हुक्म को मानना ही उसके हृदय तक पहुँचने का द्वार है ।

जब तु जीतो तो यह मत सोचना कि मैं जीत रहा हूं , जब तुम हारो तो यह मत सोचना कि मैं हार रहा हूं , वही जीतता है और वही हारता है । इसे ही उसकी लीला कहते है । भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि तू व्यर्थ बीच में अपने को मत ला , वही करी रहा है और वही करवा रहा है । यह युद्ध उसका आयोजन है जिनका मारना है वह मारेगा जिसको बचाना है वह बचायेगा ।

ओशो ने कहा है –अनेक भक्त कहते है कि बड़ई तेरी और बुराई मेरी ऊपर से देखने में अच्छा लगता है , वे बहुत विनम्र प्रतीत होते है लेकिन यह विनम्रता वास्तविक नहीं है तुमने अपने अहंकार के लिए थोड़ा सा बचा लिया । जब बुराई मेरी है तो बड़ाई तेरी कैसे होगी या तो दोनों मेरे होगें या दोनो तेरे होंगे । बड़ाई भी उसकी बुराई भी उसकी हम बीच में आते ही नहीं , हम तो बासं की पोगंरी है , वह गीत जैसा गाये उसकी मर्जी । इतनी भी अकड़ क्यों बचाकर रखते हो कि अगर भूल–चूक हुई तो मेरी । तुम रत्ती भर भी बचाओगे तो वह पूरा का पूरा बचा हुआ है । वह कहीं गया ही नहीं तुमने छिपाया है ।

जब तुम्हें दुःख मिलता है तो तुम किसी को जिम्मेदार ठहराते हो अपने को पत्नि को पिता को या पड़ोसी को यदि ठहराना है तो उसके हुक्म को जिम्मेदार ठहराओ अपने पूर्वजन्म के कर्मों को जिम्मेदार ठहराओ । कभी दूसरे को दोषी मत ठहराना और जब खुशी आये तो अपने अहंकार को मत भरना । सभी सफलताओं और सब स्वादिष्ट फलों का मालिक वही है । तुम सब उसी पर छोड़ दो तो सब खो जाएगा , सिर्फ आनन्द शेष रह जाएगा ।

कोई गाली दे तो दुःख होता है , माला पहनाए तो खुशी होती है जबकि दोनों ही घटनाएं अहंकार को घटित हो रही है । एक ही अज्ञान है मैंने किया है और एक ही ज्ञान है वह पुरूष कर्ता है मैं केवल माध्यम हूं ।मंदिर, तीर्थस्थान , धर्मग्रंथ उस परमात्मा की प्राप्ति के नक्शे हैं । उन्हें लेकर बैठने से मंजील तक न पहुंच सकोगे । उनके मार्गदर्शन में कर्म करने से ही पहूंचोगे ।

तुम क्षुद्र बातों के लिए तो धन्यवाद देते हो । तुम्हारा रूमाल गिर गया तुम उसे उठाने वाले को धन्यवाद देते हो और जिसने जीवन दिया और अन्य सभी सुख निरंतर भेज रहा है ,उसको धन्यवाद नहीं देते हो । जब भी गए हो शिकायत लेके गए हो ऐसा होना चाहिए ऐसा नहीं । धार्मिक आदमी का लक्षण है कि जो मिलजाए वह मेरी योग्यता से अधिक है । सोचो देखो जो तुम्हें मिला वह तुम्हारी योग्यता से सदा अधिक है। फिर भी अहोभाव पैदा नहीं होता ।

पूजा –संसार से अपना ध्यान हटाकर भक्त जब एकाग्र एवं शांत मन से बड़ी ही श्रद्धा के साथ अपने भगवान की पूजा करता है । तो वह पूजा ही उसकी मानसिक एकाग्रता एवं ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बन जाती है । गीता में भगवान ने कहा है कि भक्त मुझे जो भी पत्र –पुष्प आदि प्रेम से अर्पण करता है मैं बड़े प्रेम से उसे स्वीकार करता हूं ।

ईश्वर नाम का जप –जप करने से मन की प्रवृत्तियों को एक ही दिशा में लगा देना सरल हो जाता है , मानसिक एकाग्रता जो सभी साधनाओं का मूल है में जबरदस्त वृद्धि होती है और यदि लम्बे समय तक किया जाए तो ध्यान एवं समाधी भी सहज ही फलीभूत हो जाती है । आत्मसाक्षत्कार हो या ईश्वर के दर्शन सभी के लिए ईश्वर के पवित्र नाम का स्मर्ण सबसे आसान एवं अचूक उपाय है । अतः जब भी काम से अवकाश प्राप्त हो ईश्वर नाम जप करना चाहिए । निरंतर पुनरावृत्ति करते रहने से मन में उस प्रकार का अभ्यास एवं संस्कार बन जाता है, जिससे नाम जप स्वभावतः चलता रहता है । नित्य का जप एक आध्यात्मिक व्यायाम है , जिससे आध्यात्मिक स्वास्थ्य को सुदृढ एवं सूक्ष्म शरीर को बलवान बनाने में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है । लम्बे सफर में ,स्वयं रोगी होजाने पर , किसी रोगी की सेवा में संलग्न होने पर ,जन्म –मृत्यू का सूतक लगजाने पर , स्नान आदि की पवित्रता की सुविधा नहीं होने पर भी मानसिक जप चालू रखना चाहिए । मानसिक जप बिस्तर में पडे–पडे , रास्ते में चलते समय, किसी भी पवित्र या अपवित्र देश में किया जा सकता है । जप करते समय मस्तिष्क के मध्य भाग में ईश्वर का या प्रकाश ज्योति का ध्यान करना चाहिए । साधक का आहार –व्यवहार सात्विक होना चाहिए । माला जपते समय सुमेरू का उल्लंधन नहीं करना चाहिए । सूमेरु आने पर उस माला को मस्तिष्क एवं नेत्रों से लगाकर फिर से उल्टी कर चालू करनी चाहिए ।

गीता एवं योग ग्रंथों में जप को सर्वश्रेष्ठ यज्ञ बताया है ।

मनुस्मृति – होम, बलिकर्म, श्राद्ध, अतिथि–सेवा, पाकयज्ञ , विधियज्ञ, दर्शपौर्ण–मासादि यज्ञ, सब मिलकर भी जप यज्ञ के सोलहवें भाग के समान भी नहीं होते ।

महर्षि भारद्वाज – समस्त यज्ञों में जप यज्ञ अधिक श्रेष्ठ है । अन्य यज्ञों में हिंसा होती है ,पर जप यज्ञ में नहीं होती , जितने कर्म,यज्ञ, दान , तप है, सब जप यज्ञ की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते । समस्त पुण्य साधना में जप यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है ।

भगवान शंकर –तारक मंत्र राम भगवान विष्णु की गुप्त मूर्ति है । संसार में जो लोग नित्यप्रति राम –राम जपा करते है उन्हें किसी समय मृत्यू आदि के भय नहीं हुआ करतें है।कलयुग में तो एक मात्र राम नाम से मुक्ति हो सकती है और किसी उपाय से नहीं । जो उस मंत्र जप में तत्पर है उनकी माया दूर हो जाती है । काशी में मै ही मरणासन्न पुरुषों को उनके मोक्ष के लिए तारक मंत्र राम नाम का उपदेश करता हूँ ।

महर्षि वाल्मीकि – हे राम जिसके प्रभाव से मैंने ब्रह्मऋषि पद प्राप्त किया है ,आपके उस नाम की महिमा का कोई किस प्रकार वर्णन कर सकता है ।

श्री सुग्रिव – जिसकी वाणी एक क्षण भी राम –राम ऐसा सुमधुर गान करती है वह ब्रह्मघाती अथवा मद्यपी भी क्यों न हो समस्त पापों से छूट जाता है ।

कुम्भकरण –जो लोग रात–दिन मन और वचन से भगवान राम का भली प्रकार से भजन करते है वे बिना प्रयास ही संसार को पार कर श्री हरि के परमधाम को जाते है ।

नारद जी – जो लोग आपका नाम स्मर्ण करते हुए ,रूप का हृदय में ध्यान करते है , आपकी पूजा में तत्पर रहते है आपके कथामृत का पान करते रहते है तथा आपके भक्तों का संग करते है ,उनके लिए यह संसार गाय के पद के समान हो जाता है । हजारों जन्मों के किए हुए तप,ध्यान और समाधी द्वारा क्षीण पाप वाले मनुष्यों कि भक्ति भगवान कृष्ण में उत्पन्न होती है ।

हनुमान जी – आपका नाम स्मर्ण करते हुए मेरा चित्त तृप्त नहीं होता ,अतः मैं निरन्तर आपका नाम स्मर्ण करता हुआ पृथ्वी पर रहूँ ,जबतक संसार में आपका नाम रहे तबतक मेरा शरीर भी रहे ।

श्री कृष्ण – जो निरंतर कृष्ण ,कृष्ण कह कर मेरा स्वर्ण करता है , उसको नरक से मैं उसी तरह से निकाल लेता हूँ , जैसे जल फोड़ कर कमल निकल आता है । हे मनुष्यों , मैं स्वयं ऊपर भुजा उठाकर सदा कहा करता हूँ कि जो जीव मुझे प्रतिदिन मरण काल में या रण की स्थिति में है ,उस व्यक्ति को मैं उसकी अभिष्ट वस्तु दे देता हूँ । भले ही उसका हृदय पत्थर या काठ की तरह कठोर हो ।

कुंति – हे केशव अपने कर्मफल के अधिन होकर जिस –जिस योनी मैं जन्म लूं ,उस–उस योनि में मेरी भक्ति आप में बनी रहे । हे प्रभू आप मुझे सदैव दुःख एवं परेशानिया देते रहता क्योंकि दुःखों में आप हरपल याद आते हो , सुख में आपकी याद विस्मृत हो जाती है ।

श्री संजय – जो आर्त हैं ,दुःखी है ,शक्तिहीन है,भयानक हिंसक पशुओं के मध्य पड़कर जो भयभीत हो गए है । वे लोग नारायण शब्द का उच्चारण मात्र करके दुःख से मुक्त होकर सुखी हो जाते है ।

श्री विदुर –भगवान कृष्ण के जो भक्त शमगुण से सम्पन्न है और जिन्होने निरंतर अपने मन को उनमें लगा रखा है , उन भक्तों का जो दास है ,उस दास का मैं प्रत्येक जन्म में दास बनु । हरि का नाम ही मेरा जीवनर है । कलियुग में नाम के अतिरिक्त और कोई गति है ही नहीं ।

श्री कर्ण – हे श्री श्रीनिवास ,आप में भक्ति होने के कारण आपके चरणकमलों को छोड़कर मैं अन्य कुछ न कहता हूं , न सुनता हूं ,न सोचता हूं ,न किसी अन्य देवता का स्मर्ण करता हूं ,न भजन करता हूं , न ही आश्रय ग्रहण करता हूं । इसलिए हे पुरूषोत्तम आप मुझे अपनी दासता प्रदान करें ।

ईश्वर – हे पुत्र जो मनुष्य एक बार नारायण कह देता है ,वह तीन सौ कल्पपर्यन्त गंगा आदि सभी तीर्थो में नहाने का फल पा लेता है । जहां भगवान की श्रेष्ठ कथा होती है वहां गंगा , यमुना , गोदावरी , सिंधु और सरस्वती आदि सभी तीर्थ बसतें है ।

श्री यमराज जी –नरक में कष्ट झेलते जीव से यम कहते है कि क्या तुमने क्लेश के नाश करने वाले भगवान केशन का पूजन नहीं किया ।

श्री गौतम जी – करोड़ गौओं का दान, ग्रहण में काशी का स्नान, प्रयाग में गंगा तट पर दसहजार कल्पपर्यंत वासकरना, दस हजार यज्ञ करना और मेरू पर्वत के बराबर स्वर्ण का दान करना – ये सभी गोविन्द नाम के एक बार स्मर्ण के समान है ।

श्री अत्रि मुनि –गोविन्द का उच्चारण सदा स्नान है ,सदा जप है ,सदा ध्यान है ,गोविन्द के तीन अक्षर परम ब्रह्मरुप है इसलिए जिसने गोविन्द रुप इन तीन अक्षरों को उच्चारण किया , वह ब्रह्म में लीन हो जाता है ।

श्री शुकदेव जी – अच्युत नाम कल्पतरू है, अनन्त नाम कामधेनू है ,और गोविन्द नाम चिन्तामणी है , इसलिए हरि के नाम का स्मर्ण करना चाहिए ।

श्री पिप्लायन जी – आध्यात्मिक , आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों तापों को दूर करने वाले संसार के औषधस्वरुप भगवान कृष्ण को नमस्कार है । बिच्छू , जल , अग्नि , साँप , रोग औरी क्लेश को दूर करने वाले भगवान को नमस्कार है । श्री हरिरुप गुरू को नमस्कार है ।

श्री वसिष्ठ जी – जिसकी वाणी से मंगलमय कृष्ण नाम उच्चारित होता रहता है ।उसके करोडों महापातक शीघ्र ही जल जाते है और उस का पुर्नजन्म नहीं होता अर्थात वह मुक्त हो जाता है ।

श्री अग्नि देव – ईर्ष्या आदि दोषों से ग्रस्त चित्तों के द्वारा भी स्मर्ण किए गए भगवान श्री हरि पापों को वैसे ही हर लेते हैं जैसे अनिच्छा से संस्पृष्ट (स्पर्श की गई) अग्नि जला ही देती है ।

धन्वन्तरि जी – अच्युत , अनन्त और गोविन्द ये तीनों नाम औषधि का फल देते है । इनका उच्चारण करने से सभी रोग नष्ट हो जाते है, यह बात मैं सत्य ,सत्य कहता हूं ।

वामदेव जी – प्राणियों द्वारा पल भर या आधा पल भी जहाँ विष्णु का चिंतन किया जाए तो उससे करोड़ों –करोड़ कल्प तक वाछिंत फल प्राप्त होता रहता है , एवं वहीं कुरुक्षैत्र, प्रयाग तथा नैमिषारण्य तीर्थ है ।

शौनक जी – भगवान विष्णु के भक्त तो भोजन ,आच्छादन की चिंता करते है , वह व्यर्थ है क्योंकि जो संसार का पालन कर रहा है , वह भक्तों की उपेक्षा कैसे करेगा ।

तुलसीदास जी –

साधक नाम जपहिं लय लाएँ होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ।
जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारि ।।
सहित दोष दुःख दास दुरासा । दलइ नामु जिमि रवि निसि नासा ।।
सेवक सुमिरित नामु सप्रिति ।बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती ।।
नहीं कलि करम न भगति विवेकू । राम नाम अवलंबन एकू ।।
भाँय कुभाँय अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसी दसहूँ ।।
अति बड मोरि ढिठाई खोरि । सुनि अद्य नरकहूँ नाक सिकोरी ।।
रहति न प्रभू चित चूक किए की । करत सूरति सय बार हिए की ।।
कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम । तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम
राम नाम रटते रहो जब तक घट में प्राण । कबहुं तो दीनदयालु के भनक परैगी कान

कबीरदास जी –

राम नाम को सुमिर ले हँसि के भावे खीज ।उलटा –सुलटा ऊपजे ज्यों खेतन में बीज ।।
सभी रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय ।रंचक घट में संचरे , सब तन कंचन होय
जब ही नाम ह्रदय धरयो ,भयो पाप को नाश। मानो चिनगी अग्नि की पड़ी पुरानी घास।।
जागत से सोवन भला, जो को जाने सोय । अंतर लव लागी रहे सहजे सुमिरन होय ।।
सांस सुफल सोई जानिए ,हरि सुमिरन में जाय।और सांस यों ही गए करि–करि बहुत उपाय।।
जप–तप संयम साधना ,सब सुमिरन के माँहि। कबिरा जानै राम जन सुमिरन सम कछु नाहिं।।
चिंता तो हरि नाम की और न चितवै दास।जो कछु चितवै नाम बिनु सौई काल की फाँस ।।
कथा–कीरतन कलिविषे , भव सागर की नाव , कह कबीर या जगत में नांहि और उपाय ।।
देह धरे का फल यही भज मन कृष्ण मुरारि । मनुष जनम की मौज यह मिले न बारंबार ।।
तन पवित्र सेवा किये धन पवित्र किये दान । मन पवित्र हरि भजनतें होय त्रिविध कल्याण।।
मन फुरना से रहित कर जाहीं विधी से होय। चहै भगति चहै ध्यान कर चहै ज्ञान से खोय ।।
केशव केशव कूकिये ना कूकिये असार । रात दिवस के कूकते कबहूँ तो सूनै पुकार ।।
दुनियाँ सेती दोस्ती होय भजन में भंग । एका एकी राम से कै साधुन के संग ।
कहा भरोसो देह को बिनसि जात छिन माँहि।साँस–साँस सुमिरन करो और यतन कछु नाहिं।।
जीवन थोरा ही भला जो हरि सुमिरन होय । लाख बरस का जीवना लेखे धरे न कोय ।।
कबिरा सूता क्या करै जागो जपो मुरारि । एक दिना है सोवना लंबे पाँव पसारि ।।
सुखके माथे सिल पड़ो जो नाम ह्रदयसे जाय।बलिहारी वा दुःखकी जो पल–पल नाम जपाय।।

राम नाम को सुमिरते उधरे पतित अनेक । कह कबीर नहीं छाड़ीये राम नाम की टेक ।।
बाहर क्या दिखराइये अन्तर जपिये राम । कहा काज संसार से तुझे धनी से काम ।।
आया था कछु लाभ को खोय चल्या सब मूल । फिर जाओगे सेठ पाँ पलै पड़ैगी धूल ।।
ज्यूँ तीरथ मेला मँडा मिला आय संयोग । आप आपने जायेंगें सभी बटाऊ लोग ।।

नाराण दास जी –
संत जगत में से सूखी मैं मैरी का त्याग । नारायण गोविंद पद दृढ राखत अनुराग ।।
नारायण हरि लगन में यह पाँचों न सुहात । विषय भोग, निद्रा , हँसी , जगत प्रीत, बहुबात ।।
धन जौबन यों जायेंगे जा बिध उड़त कपूर । नारायण गोपाल भज क्यों चाटत जग धूर ।।

सगराम दास जी महाराज –

कहे दास सगराम मनै यो इचरज आवे । मिनख कियो महाराज भलै तू कांई चावे ।।
कांई चावै है भले यूं तो मने बताय ।राम नाम कह रात दिन जनम सफल हो जाय ।।
जनम सफल हो जाय बास अमरापुंर पावै।कहे दास सगराम मनै ये इचरज आवे ।।

जनम –जनम में करज कियो है माथे करड़ो । मिनख कियो महाराज काटदै क्यूं नहीं खरड़ों ।।
यो खरड़ो करड़ो धणो कींकर बणो बणाव । निसबासर सगराम कहै रामधणी ने ध्याव ।।
रामधणी ने ध्याव बालळदे खावंद खरड़ो । जनम –जनम में करज कियो है माथे करड़ो

कहे दास सगराम भजन करता हो दोरा । लख चौरासी जूण भूगततां होजो सोरा ।।
सोरो होजो भुगततां घणी सहोला मार । गधा होवेला ओड रा माथे लदसी भार ।।
माथे लदसी भार रेत रा भर–भर बोरा । कहे दास सगराम भजन करता हो दोरा

जाय पड़े नर नरक में मार जमां री खाय । जीभ हिलायां होवे भलो जिको कियो न जाय ।।
जिको कियो न जाय इसो कांई है दोरो ।। धणी भोलायो काम जिको सारा में सोरो ।।
किण खातिर खावंद करे सगरामदास सहाय । जाय पड़े नर नरक में मार जमां री खाय ।।

कहे दास सगराम भजन री करड़ी घाटी ।आड़ा ऊभा पाप हाथ में लियां लाठी ।।
लाठी लीयां हाथ में पांव धरण दे नाहीं । आगे मेलूं पांवड़ौ तो दे गाबड़ के मांहि ।।
दे गाबड़ के मांहि कमाई किन्ही माठी । कहे दास सगराम भजन री करड़ी घाटी

कहे दास सगराम रया दिन बाकी थोड़ा । कर सुकृत भजराम दरगड़े घालो घोड़ा ।
घोड़ा घालो दरगड़े जद पूगोला ठेठ । बिचलै बासै रह गया तो पड़सो किणरे पेट ।।
पड़सो किणरे पेट पड़ेला भारी फोड़ा । कहे दास सगराम रया दिन बाकी थोड़ा

पहर पाछ्ली रात रा भजन करो चित लाय ।प्रात समय सगराम कहे सहस गुणों होय जाय ।
सहस गुणों होय जाय सीख सतगुरू फरमाई । कहे शास्त्र अरू संत तिका में कसर न कांई ।।
सतपुरूषां रा वचन है संत कहे समझाय । पहर पाछ्ली रात रा भजन करो चित लाय ।।

खरड़ो – उधार का खत ,निसबासर – रात दिन ,खावंद – परमात्मा या मालिक ,जमां – यमराज , दोरो – कठिन , सोरो – आसान , किण खातिर – किस कारण

ध्यान – निर्विचार अवस्था का अभ्यास ही ध्यान है जो परिपक्व होने पर समाधी में परिवर्तित हो जाता है ।

त्राटक– (निर्विचार होकर किसी भी वस्तु को बिना पलक झपकाएं लम्बे समय तक देखना),

तन्मात्रा साधना – (शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श की साधना –इसमें कम से इन वस्तुओं को काम में लेकर फिर हटालेते है और आँखें बंद कर उन्हें महसूस किया जाता है ऐसा बार –बार करते है ।)आदि प्रमुख साधन है ।

4 वाणी – मौन कम बोलना,प्रिय बोलना, एवं सत्य एवं यर्थाथ बोलना(जैसा ज्ञात है वैसा बोलना), युक्तियों से शास्त्रों की व्याख्या एवं भगवतचर्चा ही वाणी के प्रमुख तप है ।इसके अतिरिक्त व्यर्थ वाद–विवाद एवं तर्कों से दूर रहना, श्रेष्ठता के अहंकार से रहित सरल भाव –भंगिमा के साथ बोलना, श्रेष्ठ भक्तों एवं ज्ञानियों से ही वार्तालाप हो मूर्खों से नहीं , वाणी में विनम्रता हो, प्रेम हो, शिष्टता हो,एवं सामने वाले का सम्मान हो , गलती होने पर क्षमा मांगना एवं कष्ट के लिए धन्यवाद अवश्य देना । मौन के द्वारा व्यक्ति की प्राण शक्ति में वृद्धि होती है एवं अनेक सिद्धियों की प्राप्ति होती है । वाणी जो हमारे मुख से निकलती है उसका प्रारम्भिक रूप कम्पन्न है , जो हमारी नाभी के निचले भाग में उत्पन्न होती है उसे परा कहते है । नाभी केन्द्र को पश्चन्ति , हृदय को मध्यमा , कण्ठ को बैखरी , और मुहँ से शब्द बाहर निकलते हैं उन्हें स्थूल शब्द कहते है । उच्च कोटी के साधक नाभी केन्द्र की पश्चन्ति वाणी का प्रयोग करते है । इसका श्रवण भी योग स्तर का व्यक्ति ही कर सकता है । परावाणी का प्रयोग केवल समाधी में ही होता है ।

5 शरीर – शरीर ही व्यक्ति का लोक एवं परलोक सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । एक स्वस्थ शरीर सभी प्रकार की साधना एवं सिद्धि प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।,जप– तप , सेवा , व्रत ,पूजन , तीर्थयात्रा , आदि श्रेष्ठ कार्य स्वस्थ शरीर से ही संभव है । व्यायाम ,आहार संयम , उपवास , ब्रह्मचर्य ,, परोपकार एवं स्वधर्मपालन में कष्ट सहना ही ही शरीर के प्रमुख तप है ।

व्यायाम – प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम शरीर को स्वस्थ रखने के लिए परम आवश्यक है ।

उपवास – साप्ताहिक उपवास तो प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य करना चाहिए ,जिससे शरीर के पाचनतंत्र के विकार सामाप्त होकर शरीर स्वस्थ रहता है ।

आहार का संयम – उचित मात्रा में व्रत करो, तीव्र भूख लगने पर ही भोजन करो, पोष्टिक आहार लेना जैसे – आंवला, अंकुरित अन्न , फल, बादाम, चने, मुनक्का, दूध–दही, हरिसब्जी,सलाद, हरडे, शतावरी, आदि ।सही प्रकार से बैठ कर ,हाथ –पैर , मुहॅ धोकर, अच्छी प्रकार से चबाकर,बिना आवाज किये भोजन करना चाहिए । हानिकारक एवं गरिष्ठ भोजन से बचना चाहिए जैसे अधिक मात्रा में चाय, नमक, धी–तेल , प्याज – लहसुन आदि

ब्रह्मचर्य –मन ,वचन एवं कर्म से मैथुन का त्याग ही ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य के अभाव में व्यक्ति रक्ताअल्पता ,विस्मर्ण ,तथा शारिरिक दुर्बलता से पीडित हो जाता है वीर्य के हास से रोगप्रतिरोधकशक्ति धटती है एवं जीवनशक्ति का ह्यस होता है एवं आयू क्षीण होती है, मन एवं शरीर कमजोर हो जाते है एवं ईश्वर प्राप्ति उनके लिए असंभव हो जाती है , संसार उनके लिए दुखालय हो जाता है ।वह न तो स्वयं उन्नती कर पाता है और न ही सामाज में कोई महान कार्य ही कर पाता है । इसीलिये हर युग में महापुरूष लोग ब्रह्मचर्य पर जोर देते है ।
ब्रह्मचर्य के पालन से बुद्धि कुशाग्र बनती है , रोग प्रतिरोधक शक्ति बढती है ,मनोबल पुष्ट होता है एवं संकल्पों में दृढता आती है । आध्यात्मिक विकास का मूल भी ब्रह्मचर्य ही है ।इसीलिए बूढे लोग किसी भी साधना का साहस नहीं जुटा पाते क्योंकि विषय भोगों से उनका ओज –तेज नष्ट हो चुका होता है मन मजबूत हो तो भी उनका जर्जर शरीर उनका साथ नहीं दे पाता ।साधना के द्वारा जो साधक वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाकर योगमार्ग में आगे बढते है वे कई प्रकार की सिद्धियों के मालिक बन जाते है ,उसे परमानंद एवं आत्मसाक्षात्कार शिघ्र ही हो जाता है ।

भगवान शंकर कहते है –हे पार्वती , बिन्दू अर्थात वीर्य रक्षण सिद्ध होने के पश्चात कौन–सी सिद्धि है जो साधक को प्राप्त नहीं हो सकती । ब्रह्मचर्य ही उत्कष्ट तप है । इससे बढकर तपश्चर्या तीनों लोकों में नहीं हो सकती ऊर्ध्वरिता पूरूष इस लोक में मनुष्यरूप में प्रत्यक्षरूप से देवता ही है । ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही मेरी ऐसी महान महीमा हुई है ।

अर्थवेद में लिखा है – ब्रह्मचर्य का पालन सभी पापों का नाश कर देता है । ब्रह्मचर्य रूपी तप से देवों ने मृत्यू को जीत लिया है । देवराज इन्द्र ने भी ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही इस उच्च पद को प्राप्त किया है । ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट व्रत है ।

जैन शास्त्र – ब्रह्मचर्य सब तपों में उत्तम तप है ।बिन्दूनाश (वीर्यनाश) ही मृत्यू है और बिन्दूरक्षण ही जीवन है । अब्रह्मचर्य घोर प्रमाद रूपी पाप है ।

वैद्यकशास्त्र – ब्रह्मचर्य ही परमबल है ।

योगीराज गोरखनाथ – पति के वियोग में कामिनी तडपती है और वीर्यपतन से योगी पश्चाताप करता है ।

युरोप के चिकित्सक डॉ निकोल – यह एक भैषजिक और देहिक तथ्य है कि शरीर के सर्वोत्म रक्त से स्त्री तथा पुरूष दोनो ही जातियों में प्रजनन तत्व बनते है । शुद्ध और व्यवस्थित जीवन में यह तत्व पुनः अवशोषित हो जाता है । यह सूक्षमतम मस्तिष्क ,स्नायू और मांसपेशिय उत्तकों का निर्माण करने के लिए तैयार होकर पुनः परिसंचरण में जाता है । मनुष्य का यह वीर्य वापस ऊपर जाकर शरीर में विकसित होनेपर उसे निर्भिक ,बलवान ,साहसी और वीर बनाता है । यदि इसका अपवयय किया गया तो यह उसे स्त्रैण, दुर्बल,कृशकलेवर एवं कामोत्तेजनशील बनाता है तथा उसके शरीर के अंगों के कार्यव्यापार को विकृत एवं उसके स्नायुतंत्र को शिथिल (दुर्बल) करता है । और उसे मिर्गी, एवं अन्य अनेक रोगों एवं मृत्यू का शिकार बनादेता है । जननेन्द्रिय के व्यवहार की निवृत्ति से शारिरिक ,मानसिक तथा अध्यात्मिक बल में असाधारण वृद्धि होती है ।

डॉ डिओ लूई – शारिरीक बल , मानसिक ओज तथा बोद्धिक कुशाग्रता के लिए इस तत्व का संरक्षण परम आवश्यक है

डॉ ई पी मिलर – शुक्रस्त्राव का अपव्यय जीवनशक्ति का प्रत्यक्ष अपव्यय है । ।व्यक्ति के कल्याण के लिए जीवन में ब्रह्मचर्य परम आवश्यक है । वीर्यक्षय से विशेषकर तरूणावस्था में वीर्यक्षय से विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते है जैसे शरीर में व्रण , चेहरे पर मूहांसे ,नेत्रों के नीचे कालापन, दाढी का अभाव ,धसे हुए नेत्र, रक्तापल्पता ,स्मृतिनाश ,दृष्टि की क्षीणता ,मूत्र के साथ वीर्यस्खलन ,अण्डकोश की वृद्धि या उनमें पीडा ,दुर्बलता या नीदं न आना ,आलस्य उदासी या ,हृदयकम्प ,श्वसावरोध,यक्ष्मा,पृष्ठ्शूल ,कटिवात, शोरोवेदना ,संधी–पीडा, दुर्बल–वृक, निद्रा में मुत्र निकल जाना ,मानसिक अस्थिरता, विचार शक्ति का अभाव , दूःस्वप्न, स्वप्नदोष , तथा मानसिक अशांति आदि ।

वीर्य बनने में 30 दिन व 4 धण्टे लगते है । 32 किलो भोजन से 700 ग्राम रक्त बनता है 700 ग्राम रक्त से लगभग 20 ग्राम वीर्य बनता है जिसे बनने में लगभग 40 दिन लगते है और एक बार के मैथुन में लगभग 15 ग्राम वीर्य निकल जाता है । अतः वीर्य को क्षणिक सुख के लिए नष्ट नहीं करना चाहिए ।

सुकरात से एक व्यक्ति ने पूछा जीवन में कितनी बार स्त्री प्रसंग करना उचित है जवाब था जीवन में एक बार । यदि इससे तृप्ती न होसके तो महिने में एक बार फिर भी मन न भरे तो महिने में दो बार लेकिन मृत्यु शिघ्र आयेगी यदि इतने पर भी इच्छा बनी रहे तो जवाब था तो ऐसा करें पहले कब्र खुदवालें , कफन और लकडी घर में लाकर रखें फिर इच्छा हो से करों ।

राजा मुचकुंद ने भगवान से वरदान में भक्ति मांगी भगवान ने कहा – तूने जवानी में खुब भोग भोगें है विकारी जीवन जीने वाले को दृढ भक्ति नहीं मिलती ,दृढ भक्ति के लिए जीवन में संयम होना बहुत जरूरी है तेरा यह शरीर समाप्त होगा तब दूसरे जन्म में तुझे भक्ति प्राप्त होगी ।

श्री रामकृष्ण परम हसं कहा करते थे कि किसी भी सुंदर स्त्री पर नजर पड जाए तो उसमें माँ जगदम्बा का दर्शन करो ऐसा विचार करों कि यह अवश्य ही देवी का अवतार है तभी तो इसमें इतना सौदर्य है । माँ प्रसन्न होकर इस रूप में दर्शन दे रही है , ऐसा समझकर सामने खडी स्त्री को मन ही मन प्रणाम करों ऐसा करने से तुम्हारे भीतर काम विकार न उठसकेगा । जब तक पराई स्त्री माॅ नजर नहीं आयेगी तब तक मुक्ति को कोई उपाय नहीं है । एक वैश्या से लेकर कुलवधु तक सभी माॅ जगदंबा मे रूप एवं उसका हास–विलास है और कुछ नहीं ।

महाभारत में लिखा है –काम संकल्प से उत्पन्न होता है उसका सेवन किया जाए तो बढता है और जब बुद्धिमान पुरूष उससे विरक्त हो जाता हे तब वह काम तत्काल नष्ट हो जाता है

अन्य प्रमुख तप इस प्रकार है –अस्वाद तप (धी–तेल, मिर्च –मसाले रहित एकदम स्वाद रहित भोजन करना), तितिक्षा (सर्दी–गर्मी, बरसात, आदि ऋतुओं एवं लोगों के कटुवचन ,र्दुव्यवहार एवं अपमान को क्षमाकर सहन करना), कर्षण तप (स्वावलंबन अर्थात अपना कार्य स्वयं ही करना एवं सदा जीवन जीना अर्थात सुख साधनों का न्यूनतम उपयोग करना) गव्यकल्प तप (गो सवा एवं गाय के दूध – दही का अधिक उपयोग) प्रदातव्य तप अर्थात दान करना (प्रमुख दान – अन्न,जल, वस्त्र, भूमि – भवन , सम्मान करना , सेवा करना , ज्ञान , कन्यादान, फल , जूते , छाता आदि है ।), निष्कासन तप (अपनी कमियों एव पापों को दूसरों को बताना) चान्द्रायण व्रत (चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार कम करना एवं बढाना), अर्जन तप (विद्याध्ययन,संगीत,नृत्य ,गायन आदि कलाएं सीखना) ।

ईश्वर प्राप्ति के लिए उनका स्मर्ण (स्वाध्याय सतसंग ,चिन्तन आदि के माध्याम से) , पूजन , ध्यान ,नाम– जप , शरणागति ग्रहण करना प्रमुख साधन है । एवं स्वर्ग प्राप्ति के लिये तीर्थ, व्रत, परोपकार (सेव एवं दान आदि के द्वारा), यज्ञ, यम–नियम , योग एवं तप आदि प्रमुख साधन है ।

नरेन्द्र कोहली – (महासमर से)

श्री कृष्ण – मैं अपनी प्रभूता प्रकाशित करके अपने सजातियों एवं कुटुंबियों को अपना दास बनाना नहीं चाहता । मुझे जो भी भोग प्राप्त होता है उनका आधा ही भाग अपने उपयोग में लाता हूं शेष कुटुंब के लिए छोड़देता हू और उनकी कड़वी बातें सुनकर भी उनको क्षमा कर देता हूं ।

कष्ट तो शरीर का धर्म है आत्मा को उसका अनुभव नही होता । शरीर के रहत हुए भी आत्मनिष्ठ को ये कष्ट विचलित नहीं करते है । साधक यदि अपना स्वरूप पहचान कर स्वयं को आत्मा के रूप में देखता है और इस शरीर से पृथक अनुभव करने लगता है तो उसे उस शरीर के कोई कष्ट पीड़ित नहीं करते ।

जो क्षत्रिय असत्य के मार्ग पर चलने वाले पिता, दादा ,भाई , गुरूजन , संबन्धि तथा बंधु – बांधवों को संग्राम में मार ड़ालता है। वह धर्म का ही पालन करता है ।

जिनके लिए जीवन में अपनी प्रतिज्ञा, अपना अहंकार और अपना व्यक्तिगत रागद्वेष इतना महत्वपूर्ण होता है कि मानवता के सारे सिद्धान्त गौण हो जाते है उनका शीघ्र ही अन्त हो जाता है ।

किसी के प्रति न्याय के लिए कठोर कर्म करने के पश्चात उसके सम्मुख दयाभाव या दीनता प्रकट करना घातक होता है ।

पत्नि एवं पुत्र तो देखते है कि उनका पति और पिता क्या –क्या अर्जित कर सकता है, उसे अर्जित क्यों नहीं करता ? होने को तो वह परिवार का मुखिया होता है किन्तु वह वास्तव में अपने परिवार की इच्छाओं का दास होता है । व्यक्ति को अपने परिवार की इच्छाओं का दास नहीं वरन मुक्त एवं निर्बन्ध होना चाहिए ।

आत्मा परमात्मा का अंश है। उस आत्मा पर ही सारी स्मृतियाँ लिपटी रहती है । परत पर परत चढ़ी रहती है स्मृतियों की । जब तक उन्हें उतारा नहीं जाएगा तब तक आत्मा का मूल स्वरूप कैसे प्राप्त होगा ।

शत्रुता एवं मित्रता व्यक्ति के व्यवहार, घटनाओं एवं स्वार्थों से नही वरन प्रकृति के गुर्णो से होती है ।

ब्राह्मण के गुण पवित्रता ,परिश्रम, अन्य लोगों के गुंणों में छिद्र न ढूंढ़ना , कामना न करना, इंद्रियों को विषयों से रोकना , दान देना एवं दया करना ।

हमें किसी से द्वेष अथवा मोह नहीं पालना चाहिए, हमें निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए । युद्ध में उतरना और जय की इच्छा मन में न रखना अथवा जय के लिए पूर्ण प्रयत्न न करना पाप है । जीव के लिए जो भी युक्ति आवश्यक हो करो ।

मेरा न कोई पुत्र प्रिय है न ही कोई पिक्ष मुझे तो केवल एक धर्म ही प्रिय है । कोई हमारा स्वार्थ सिद्धकरदे तो वह हमें प्रिय नहीं हो जाना चाहिए चाहे वह धर्म विरूद्ध ही हो । कोई हमारे परिवार में जन्म ले तो वह हमारा रक्षणीय नहीं हो जाता । रक्षणीय तो केवल धर्म ही है ।

जीवन के सफलता पूर्वक वही जी सकता है जो अपनी निश्चयात्मक बुद्धि से जिये जो निर्णय निश्चयात्मक बुद्धि से ले उसे फिर स्वार्थ या इंद्रिय सुखों के लिए बदले नहीं । विक्षेपों से तो उर्जा बिखरती है ।

यह आसक्ति ही कष्ट देती है यही दुःख का कारण है आसक्ति ईश्वर के अतिरिक्त किसी में होनी ही नहीं चाहिए

अपने परिवार के पालन–पोषण (जो कर्तव्य भी है) के लिए जो कष्ट सहा जाता है उस कष्ट में जो सुख होता है वह प्रेम है । उनलोगों पर अधिकार जताना उन्हें अपने से बांधकर रखने का प्रयत्न ही मोह है और अपना जीना स्थगित कर उनके माध्यम से जीने का प्रयत्न और इस प्रकिया में पाया गया कष्ट तथा उनको दिया गया क्लेश ही आसक्ति है ।मोह एवं आसक्ति के कारण दुःख होता है प्रेम के कारण नहीं ।

विषय लोलुप व्यक्तियों की सारी उपलब्धियां शरीर के सुख तक ही सीमित है । शरीर असमर्थ होता जाता है तो उन सुखों का भी अंत होता जाता है । विषय तो रहत है परन्तु इंद्रियां उनका भोग नहीं कर पाती ।

पलंग पर बैठा हुआ गरिष्ठ भोजन करने वाला व्यक्ति अपने को सुखी मानता है । जबकि वह सीधे–सीधे रोग राज्य में प्रवेश कर रहा है । अखाड़े , खेल के मैदान , अथवा खेत खलिहान , में श्रम कर पसीना बहाते व्यक्ति को वह कष्ट सहन करता हुआ दुःखी व्यक्ति मान रहा है । जबकि वह निरूग्णता और पुष्टता की ओर अग्रसर हो रहा है । अपने संचित कर्मो के परिणामस्वरूप व्यक्ति ईश्वर द्वारा उन कर्मों की ओर प्रेरित होता है जो उसके वास्तविक सुख–दुख के दाता है ।

अपराधी को दूसरी बार क्षमा नहीं किया जा सकता है । परिक्षित की पुनः परीक्षा बुद्धिमता नहीं है ।

<u>ओशो प्रवचन</u>

हमारे व्यक्तित्व के तीन तल है, शरीर, मन एवं आत्मा। तीनों तलों की कुछ भूख या आवश्यकता है। शरीर की आवश्यकता रोटी, पानी, वायू आदि है, जो न मिले तो शरीर कष्ट में पड़ जाता है और आपका सहयोग भी छोड़ सकता है। उसकी माँग पूरी होने पर शरीर का कष्ट मिट जाएगा। परन्तु सुख नहीं मिलेगा। हाँ दुःख या कष्ट का अभाव हो जाएगा। कुछ लोग इसी तल पर जीते है।

दूसरा तल है मन का उसकी भूख है संगीत, साहित्य, मित्रता, कला आदि, ऐसी वस्तुएं जिनमें उसकी रूची हो। उपरोक्त वस्तुओं में से एक बार सुख प्राप्त होने पर यह सुख बार –बार चाहिए । मन की दूसरी विशेषता है कुछ नया चाहिए, एक ही वस्तु से वह जल्दि ही बोर हो जाता है चाहे वह कुछ भी हो । उपरोक्त वस्तुओं की प्राप्ति न होने पर शरीर को कष्ट नहीं होता परन्तु मन उसके अभाव में कष्ट महसूस करता है। मन के सुख क्षणिक है। जल्दि ही मन बोर हो जाता है।

तीसरा तल है आत्मा का। आत्मा की भूख है परमात्मा या धर्म। जब तक उसे परमात्मा की प्राप्ति न हो वह एक बैचेनी या खालीपन महसूस काता है। परंतू एक बार परमात्मा की झलक मिल जाए तो फिर शांति और आनन्द हमेशा के लिए आ जाता है। आत्मा का सुख ही शाश्वत

है। आत्मा की भी आवाज होती है। जो हमेशा सच्चाई ,धर्म एवं परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। मन की आवाज हमें इन्द्रिय सुखों के लिए प्रेरित करती है।

सबसे पहले काया की परत है दूसरी परत विचार की है, तीसरी परत भाव की है – शरीर, मन, हृदय इन तीनों के पार असली सम्राट का निवास है । इन तीनों को पार करना है । इसके लिए आत्मस्मृति या ध्यान चाहिए ।

पहले कोष का प्रतीकूल गुण है कामवासना और अनुकूल गुण है ब्रह्मचर्य दूसरे कोष का अनुकूल गुण है अभय, प्रेम , क्षमा, और अहिंसा और प्रतिकूल गुण है भय ,धृणा क्रोध और हिंसा । तीसरे कोष के अनुकूल गुण है श्रद्धा, विचार और विवेक और प्रतिकूल गुण है संदेह । एक मात्र संदेह ही साधना के धारातल पर रूपांतरित होकर श्रद्धा फिर विचार और अंत में विवेक का रूप धारण कर लेता है । चौथे कोष का अनुकूल गुंण है संकल्प और अतीन्द्रिय दर्शन और प्रतिकूल गुंण है कल्पना और स्वप्न । पाँचवें कोष का अनुकूल गुण है द्वेत और प्रतिकूल गुण है मूर्छा । प्रतिकूल को अनुकूल में रूपांतरित करना ही साधना है ।

सबसे पहले काया के प्रति जागो –बैठे तो जानना रहे की बैठे हैं, भोजन करें तो जाने कि भोजन कर रहें है । शरीर की प्रत्येक प्रकिया का बोध होने लगे जब कायस्मृति सधती है तो जीवन में बहुत सी बातें अपने–आप समाप्त हो जाती है । जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि समाप्त हो जाएंगें । इसके लिए प्रयोग है हाथ या पाँव धीरे –धीरे उठाओ । प्रत्येक क्रिया देखते हुए धीरे –धीरे करो । चार कदम से अधिक आगे देखकर मत चलो । धीरे–धीरे चलो । यह क्रिया कमसे कम दो वर्ष करो ।

विचारों के प्रति जागो –प्रत्येक विचार के उठने एवं समाप्त होने के प्रति जागरुक रहना ,निर्विचार रहना । तुम्हारी आँख, कान, श्वास, स्पर्श का अहसास, हँसना –रोना, वैसा होना चाहिए जैसा माँ की कोख से निकलने पर बच्चे का होता है । उतना ही संवेदनशील ।

सर्दि–गर्मि , भूख –प्यास ये शरीर को प्रभावित करती है । मन एवं आत्मा की आवश्यकता नहीं है, परन्तु मन एवं आत्मा, शरीर के कष्ट को अवश्य अनुंभव करते है । शरीर की आवश्यकता पूरी होने पर वह स्वस्थ एवं जीवित रहेगा। परन्तु आत्मदर्शन के पश्चात उसे जीवित रहने के लिए इनकी भी आवश्यकता नहीं रहेगी । केवल आत्मा की ऊर्जा से ही वह स्वस्थ एवं जीवित रह सकता है । लोगों का जीवन या तो शरीर की आवश्यकता पूरी करने में चला जाता है या मन की मांगों को पूरा करने में ही चला जाता है । जो व्यक्ति शरीर, मन या आत्मा जिसकी आवश्यकता को पूरा करेगा वही बलवान हो जाएगा । आत्मा की आवश्यकता है एकाग्रता एवं ध्यान (र्निविचार रहना) जिससे वह बलवान होकर ब्रह्मदर्शन का सुख प्राप्त कर सकती है । किसी भी कार्य को वर्तमान में मन को स्थापित कर एकाग्रता से करने से एकाग्रता में वृद्धि होती है । भूत एवं भविष्य का चिंतन त्यागने पर ध्यान विकसित होता है ।

ध्यान का हमारे काम से कोई विरोध नहीं है । हम जिस काम को भी एकाग्रता से ध्यानपूर्वक करें वही काम हमें परमात्मा की तरफ ले जाने वाला बन जाता है । व्यस्त जीवन से परमात्मा का काई विरोध नहीं है । बल्कि वह तो सहायक है, परमात्मा प्राप्ति में । विचार रहित हो जाना, साक्षी हो जाना ही ध्यान है ।

यह बात गलत है कि ध्यान में हमें मौन होना है । असल में ध्यान का मतलब यह है कि हमें यह सतत जानना है कि हम सदा से मौन है । यानी वहाँ जहाँ हम है वहाँ कभी कोई विचार प्रवेश किया ही नहीं । कभी और कभी भी नहीं कर सकता । वहाँ हमारी केवल चेतना है । जैसे समुद्र में केवल लहरें चलती है और अंइर सब शांत रहता है । हमारी चेतना की बाहरी परत में ही सब विचार चलतें है अंदर सब शांत है, मौन है । विचार उठना एक स्वभाविक प्रक्रिया है । जैसे दुकान पर बैठे है किसी के गलती करने पर विचार उठेगें और हमें उसे डांटना भी पड़गा । यदि र्निविचार रहे तो कुछ कर ही नहीं पाएंगें और सब गलत हो जाएगा । जो व्यक्ति असंग भाव को साधता है उसे एकाग्रता या ध्यान की कोई आवश्यकता नहीं है । असंग तो ध्यान की केन्द्रीय प्रकिया है ।

ध्यान या साक्षी भाव की अवस्था में मन के संकल्प –विकल्प बंद हो जाते है । परंतु बाकी दैनिक कार्य अधिक एकाग्रता एवं बढ़िया तरीके से सम्पन्न होते है । जैसे मन में जीवित रहने पर ,किसी व्यक्ति के गिरने पर मन में संकल्प –विकल्प उठतें है कि मैं इसे उठाऊँ या नहीं परंतु ध्यान की अवस्था में व्यक्ति उसे सहजता से बिना विचार किए उठालेगा । उसे ऊठाना महसूस होगा अर्थात कार्य स्वतः ही हो जाएंगें ।

ध्यान के थोड़े –थोड़े अभ्यास से ही यह बढ़ता है ,फिर एक दिन समाधी में स्वतः बदल जाता है । समाधी अर्थात इच्छा रहित जाग्रती । दुःख में ध्यान करना कठिन है बहुत , दुःख बड़ा विघ्न है । सुख में ध्यान करना सरल है लेकिन सुख में कोई ध्यान नहीं करता । इसलिए जब सुख का क्षण हो तो चूकना ही मत , उस सुख के क्षण को ध्यान में समर्पित कर देना । उस उत्साह के क्षण को यदि तुम ध्यान में लगा दो तो जो ध्यान वर्षो में पूरा न होगा वह क्षणों में पूरा हो जाएगा । सुख के क्षण में भगवान को याद कर लेना वह याद बड़ी गहरी हो जाएगी । वह तुम्हारी अन्तर्रात्मा को छूलेगी । वह तुम्हारे प्राणों की गहराई में प्रतिष्ठित हो जाएगी । तुम मन्दिर बन जाओगे ।

ज्यों –ज्यों व्यक्ति आत्मा के करीब जीने लगता है । उसके भूख–प्यास , काम ,क्रोध ,लोभ ,मोह , स्वतः ही मिट जाते है । ध्यान निरंतर 24 धन्टे का होना चाहिए , यह एक जीवन शैली है । दुनिया का शास्वत सुख एक ही है स्वयं में रमण । एक बार लग गया तो छूटता नहीं । आदमी का स्वभाव है ध्यान एवं ज्ञान का , स्त्री का स्वाभाव है प्रेम का कुछ अपवादों को छोड़कर इससे ईश्वर प्राप्ति आसान है ।

ध्यान से भरा हुआ व्यक्ति कठोर नहीं हो सकता , उसमें करूणा ,क्षमा सहज ही बहती है । तुम यह सोचते हो कि दुनिया सुखी जो जाए तभी ध्यान करूंगा तो दुनिया पूरीतरह कभी सुखी होने वाली नहीं है और तुम्हारा ध्यान भी कभी न हो पायेगा ।

ध्यान तो वर्षों के श्रम से मिलेगा ,इंच –इंच बढ़ेगा ,बूंद –बूंद बढ़ेगा ,लंबी यात्रा है । पहूंचेगें या नहीं पहूंचेगें पक्का नहीं है और चूकने पर पुनः ऊँचाई से नीचे आने की संभावना भी है , जबतक तुम पूर्ण चोटी (समाधी) तक न पहुंच जाओ ।

ध्यान के लिए किसी भी वस्तु या आदत को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है । अध्यान के अभ्यास से अनावश्यक वस्तुएं एवं आदतें स्वतः ही छूट जाएगी ।

ध्यान रखकर जीने की कोशिश करना कि जो ऊपर की और ले जाता है वही देखूंगा , सुनुगां ,बोलूगां ,वही खाऊंगा, वही पहनूगां , वही पढ़ूंगा उसी से मिलूंगा । जीवन को अगर साधना बनाना है तो सब तरफ से हमला करना होगा ।

संसार से मुक्ति के लिए मन का मनोरंजन नहीं बल्कि ध्यान से मनभंजन करो । मन दर्पण की भांति है , इसपर विचारों की धूल जम जाती है । उस विचारों की धूल को पौंछ दें यही धर्म का सार है ।

तुम ध्यान में प्रवेश करो या भक्ति में , तुम पाआगे कि समय मिट गया है । तुम समय से बाहर हो गये हो । जहां विचार नहीं वहां समय नहीं । जहां विचार है वहां समय है । समय या मन समझाए चला जाता है , नये प्रलोभन दिये जाता है । वह कहता है कि अभी तो जिन्दगी की शराब पीने को बाकी है । ध्यान सिर्फ अहंकार की मृत्यू है ।

परमात्मा से मिलन कोई धार्मिक आवश्यकता नहीं है , वह तो स्वरूपगत आवश्यकता है । जब सारी कल्पनाएं एवं विचार चित्त छोड़ देता है,तब वह उसे अचानक उदघाटित होता है । कि इस सारे विश्व अखंड़ का , इस पूरे जगत का वह एक जीवित हिस्सा मात्र है । उसका स्पंदन इस सारे जगत के स्पंदन से एक हो जाता है । उसके प्राण इस सारे जगत के साथ आन्दोलित होने लगते है । उसमें कोई भेद या सीमा नहीं रह जाती ।

जब चित्त शुन्य होजाता है तो जीवन शुद्ध स्वतः ही हो जाता है । चित्त शुन्य हो तो उस शुन्य से वह आँख मिलती है जो जगत में छिपे रहस्य को खोल देती है और तब पत्ते नहीं दिखते पत्तों का जो प्राण है उसका दर्शन होने लगता है । सागर की लहरें नहीं दिखती , बल्कि लहरों को जो कंपाता है उसके दर्शन होने लगते है । मनुष्यों को तब देहें नहीं दिखती बल्कि देहों के भीतर प्राण स्पंदित है उसका अनुभव होने लगता है । तब कैसे आश्चर्य का और कैसे चमत्कार का अनुभव होता है उसे कहने का कोई उपाय नहीं है ।

शरीर , विचार एवं भाव शुद्धि के बिना केवल दृढ़ संकल्प शक्ति से ध्यान में प्रवेश हो सकता है । सर्वप्रथम हर समय यह महसूस करो कि तुम शरीर नहीं हो तो पहला चरण शुन्यता लाने का विकसित होगा । चोट लगने पर महसूस करें कि आपके चोट लगी है या आप केवल चोट को जान रहें है , केवल दर्शक है । चलने पर महसूस करें आप वहीं है केवल शरीर चल रहा है । भूख लगने पर देखें कि आप दर्शक है,आपको भूख लगती ही नहीं ।

ध्यान का अर्थ किसी को स्मर्ण में लाना नहीं है । ध्यान का अर्थ है जो स्मर्ण में है उसे गिरा देना है और एक एसी स्थिति लानी है कि केवल चेतना मात्र रहजाए । केवल साक्षी भाव रहे लेकिन चक्रों या श्वास का ध्यान इसमें बाधक नहीं सहायक है क्योंकि इनसे कोई प्रेम या उत्तेजना सृजित नहीं होती ।

योग की दृष्टि में सात चक्र होते है । ध्यान के लिए हम पाँच का प्रयोग करेंगे । प्रत्येक केंद्र पर ध्यान केंद्रित करने से उससे सम्बन्धित शरीर के अंग शिथिल हो जाते है और आराम महसूस करते है जो ध्यान में सहायक है । अंत में चोटी के पास थोड़ासा भार या धक–धक मालूम होगा

समाधी या ध्यान में प्रवेश का संकल्प बहुत शक्तिशाली साधन है । हम सोच लेते है ,हमें ध्यान करना है , पर मन का बहुत कम हिस्सा यह सुनता है ,बाकी अपरिचित रह जाता है । वह अपरिचित हिस्सा हमारा साथ नहीं देता और अगर उसका साथ हमें नहीं मिला तो हमारी सफलता संदिग्ध है । उसके लिए कुछ आसान प्रयोग है ।

(1) जब आप नींद में सोने लगें तो उससे पाँच मिनट पूर्व उस संकल्प को दोहराते हुए सो जाएं । जब यह संकल्प पूरे प्राणों में गूंज जाता है तो कार्य सिद्ध होता है ।

(2) अपनी सारी श्वास बाहर फैंक दें । फिर श्वास को अंदर लेजाने से रुक जाएं , उस समय प्राण उस श्वास को लेने के लिए तड़फने लगेंगे ।आपके गहरे अचेतन का हिस्सा पुकारने लगेगा कि हवा चाहिए ,जितनी देर रोकेंगे उतनी ही गहरे वह मांग उठेगी । वह हिस्सा सक्रिय होगा जब जीवन एवं मरण का प्रश्न उठ जाए उस समय यह संकल्प दोहराओ कार्य सिद्ध होगा ।

(3) सोते समय भी चेतन मन तो बेहोश होजाता है , अचेतन मन सक्रिय होजाता है । उस समय यदि आपके मन में यह बात गूंजती रही तो वह अचेतन के पर्तों में प्रविष्ट हो जाएगी । । और आपको परिणाम दिखाई देंगें । जब श्वास बाहर फैंक रहें हों तो संकल्प दोहराते रहें । धबराएं नहीं पूरी श्वास आप कभी बाहर नहीं फैंक सकते , जब आपको लगे बिल्कुल नहीं तब भी थोड़ी रहती है ,उसको भी फैंकें और संकल्प दोहराते रहें । यह अदभुत प्रक्रिया है ,अचेतन पर्तों में विचार प्रविष्ट कराने की । कम से कम पाँच बार एसा करें ।

अंतरंग साधना में शरीर को , विचार को एवं भाव को शून्य करतें है । विचार करो तुम्हारा केन्द्रिय चिंतन क्या है । दिन में अधिकतर किस पर सौचते हो , वही तुम्हारी कमजोरी है । उसे दूर करो । धन, काम एवं यश ये तीन प्रमुख केंद्र है । ज्यों –ज्यों ध्यान या भक्ति बढ़ेगी ये सभी स्वतः समाप्त हो जाएंगें । आपके भीतर सभी विचार बाहर से आते है । बस खूंटियां आपके भीतर है । उनपर उन्हें टांक देते हो । ध्यान उन खूंटियों को हटा देता है । खाली बैठना बेहतर है बजाए कचरा इकट्ठा करने के । रेड़ियो , टेलीविजन , अखबार , बातचीत से सब कचरा इकट्ठा करते है । प्रकृती में प्रकृति बन जाओ महसूस करो वृक्षों में तुम भी एक वृक्ष हो ।

असंग भाव की साधना – असंग का अर्थ यह नहीं है कि चुप हो जाए , और जो होता है उसे होने दें । असंग का अर्थ है कि करते हुए अपने को अलग महसूस करें । यह समझें कि अभिनय हो रहा है । जो भी हो रहा है उसका अभिनय से अधिक मूल्य नहीं है । उसके लिए मुझे पीड़ित होने , चिंतित होने ,दुःखी होने या तनाव भरने का कोई कारण नहीं है । जब यह भाव गहरा होता जाएगा तो साक्षी भाव विकसित हो जाएगा । अपने भीतर एक एसा बिंदू खोजना है जो सदा बाहर रहे । हम चलें तो , बोले तो , सुने तो , यह सोचें यह तो शरीर कर रहा है ,क्योंकि आत्मा के न पाँव है , न कान है , न मूहँ है । हमेंशा यह ध्यान रखें कि मैं पृथक हूं । विचार या भाव आएं , चलें जाएं । अच्छे आएं , बुरे आएं ये मन के धर्म है। हमें उनसे कोई आसक्ति या विरोध न हो यदि आप किसी को समझा रहें हों तो आपका शरीर एवं मन समझा रहा है । । आप नहीं, आप तो देख रहें हो , महसूस कर रहे हो । उसी दिशा में मेहानत करने का नाम ही असंग भाव है । सोते समय भी यही भाव रखो कि शरीर एवं मन सोता है मैं नहीं । मैं तो सजग हूं । इसमें नींद ज्यादा कुशलता से आयेगी , थकान भी चली जाएगी और हम सजग भी रहेंगें । हर क्षण उस बोध को बढ़ाते रहो । बात–चीत चल रही है तो हमारे बाहर चल रही है । विचार चल रहा है तो हमारे बाहर चल रहा है । हम तो मौन ही है । हमने विचारों को अपना समझ लिया । यदि विचार अपना होता तो हमारी मर्जी से आता और जैसा हम चाहते वैसा आता । परंतु ऐसा नहीं है इसलिए विचार मन का धर्म है जो हमसे अलग है हम उस मन के विचारों के साक्षी है । साक्षी भाव के विकसित होने पर विचार हमारी इच्छा से ही आयेंगें या नहीं ।

मेरा कुछ नहीं है, मैं कुछ नहीं सौचता, मैं कुछ नहीं करता यही भाव विकसित करो । सब कुछ प्रकुति करवा रही है । यह सब नाटक है परन्तु इस नाटक को पूरी तल्लीनता एवं मेहनत से करो तभी जीत है । न भय हो न आसक्ति न चिंता न राग और न मोह ।

ध्यान के लिए अपनी श्वास के साक्षी हो जाओ । उसके आने –जाने का निरीक्षण करो । एसा करते –'करते समाधी को उपलब्ध हो जाओगे । जो लोग श्वास की लय बद्धता से परीचित हो जाते है वे शरीर एवं मन के बड़े गहरे स्वामित्व को उपलब्ध हो जाते है । वे विचारों एवं श्वास के साक्षी बन जाते है । फिर सबकुछ उनके लिए प्राप्त हो जाता है । वे लोग विचार जाल में उलझे नहीं रहते । जब उन्हें विचार की आवश्यकता होती है ,विचार का उपयोग कर लेते है । विचार उनके लिए आज्ञाकारी होजाता है । बिना उनकी आज्ञा के विचार न उत्पन्न होता है न प्रवेश करता है । यह ध्यान के अभ्यास से होता है । ध्यान अर्थात निर्विचार रहने का अभ्यास ।

श्वास देखने के दो उपाय है एक तो एबडोमन पर देखना ,जहां पेट ऊँचा –नीचा होता है । । दूसरा नाक के पास जहां श्वास छूती है , वहां देखना जिसको जहां सुविधाजनक लगे । यह ध्याान का उपाय है ।

जिसे योग अनहद नाद कहता है । वह वास्तव में मस्तिष्क तरंगों से निकलने वाली उत्तेजक ध्वनी ही है । योगीगण मानसिक शक्ति के विकास के लिए इस ध्वनी पर अपने चित्त को एकाग्र करते है ।

साधना में मौन का बहुत महत्व है , अनावश्यक बातचीत न करें । जीतना सार्थक हो बोलें बाकी चुप रहें । बोलने में व्यर्थ शक्ति व्यय होती है ,वह संचित होगी । भीड़ में जीवन का श्रेष्ठ सत्य कभी पैदा नहीं होता है और न ही कभी अनुभव होता है । जो भी सत्य के अनुभव हुए है वे अत्यन्त एकांत में और अकेलेपन में हुए है । जब हम सारी बातचीत भीतर से एवं बाहर से बंद कर देते है । तो प्रकृति किसी रहस्यमय ढ़ंग से हमसे बोलना शुरू करदेती है । वह शायद हमसे निरंतर बोल रही है लेकिन हम अपनी बातचीत में व्यस्त है । वह धीमी आवाज हमें सुनाई नहीं पड़ती । हमें अपनी सारी आवाज बंद करनी होगी ,ताकि हम उस अंतस चेतन की आवाज सुन सकें जो प्रत्येक के अंदर चल रही है । हमें प्रकृति के मध्य रहकर उसे महसूस करना है । प्रकृति के सानिध्य में व्यक्ति जितनी शिध्रता से परमात्मा की निकटता में पहूँचता है उतना और कहीं नहीं पहुंचता है । भीतर सब शांत हो इसके लिए बहुत स्वष्ट भीतर आदेश देदें कि बातचीत मुझे नहीं करनी है । अपने भीतर स्वयं से कहें । तीन दिन भीतर आदेश दें अवश्य फर्क पड़ेगा ।

आप किसी बच्चे को कोई भी चीज सोचने को कहें । फिर अपनी सारी श्वास बाहर फैंक दें । जब श्वास भीतर न रह जाए तो संकल्प करें उस बच्चे के भीतर क्या चल रहा है । दो –तीन दिन में आप जानने लगेंगे फिर एक शब्द के बाद सारी लाईन जानने लगेंगे । पर इसका अर्थ यह नहीं है । कि आप ज्ञानी हो गए । यह तो पूर्ण ज्ञान से बहुत दूर की बात है । सत्य या परमात्मा की प्राप्ति का समाधी के अतिरिक्त कोई रास्ता है ही नहीं ।

नाभी मण्ड्ल के केन्द्र पर पदमासन की मुद्रा में मन को स्थिर कर चित्त को एकाग्र करना चाहिए । इसके निरंतर एवं लम्बे अभ्यास से जब एकाग्रता धनीभूत होती है तो पार्थीव शरीर का बोध अलग से होने लगता है ।

इंद्रियों के द्वारा जो भी ज्ञान प्राप्त होता है वह बाहरी ज्ञान होता है । समाधी द्वारा अवचेतन का द्वार खुल जाता है तब हमें जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अंर्तजगत से प्राप्त होता है । उसे अंर्तज्ञान कहते है । इस विशेष अवस्था में ब्रह्माण्डीय चेतना से हमारी मस्तिष्कीय चेतना को जो ज्ञान प्राप्त होता है वही ब्रह्मज्ञान या परम ज्ञान है ।

किसी के पीछे मत जाओ , ठहर जाओ और तुम वहां पहूंच जाओगे जहां तुम्हें पहुँचना है । कुछ चीजें एसी है जहां रुक कर पहूंचा जाता है । धर्म ऐसी ही चीज है । जहां चलकर नहीं पहूँच सकते । इस लिए किसी गुरु की जरूरत नहीं है । किसी वाहन , पुंस्तक या यात्रा की जरूरत नहीं है । वहां तो वे पहूंचते है जो सब तरीके से रुक जाते है ।

हम जो देखते ,सुनते ,सोचते , पढ़ते है वो हमारे मन में एकत्र हो जाता है । जो कभी नष्ट नहीं होता है । इसीलिए सतसंग का महत्व है । केवल समाधी में ही मनोमय शरीर नष्ट होता है ।

जब तुम ईश्वर को दुःख में याद करते हो तो याद करने का परिणाम इतना ही होगा कि तुम दुःख से छूट जाओगे । प्रभू की स्मृति है राहत तो देगी । लेकिन यदि सुख में याद करोगे तो सुख से भी छूट कर महासुख , शास्वत सुख , जो सदा रहता है को प्राप्त हो जाओगे । सुख कभी भी जीवन का लक्ष्य नहीं होता क्योंकि वह शास्वत नहीं रहता । (लक्ष्य तो परमसुख परमात्मा ही है) इसलिए यदि सुख मिल जाए तो भी कुछ मिला नहीं बहुत ।

ईश्वर के नाम जाप या मंत्रजाप से ईश्वर से तार जुड़ जाएगा । संगीत जम जाएगा ,वीणा बजने लगेगी ,ध्यान की झलक मिल जाएगी , ईश्वर के साथ एकरूप हो जाओगे । जिसको हम स्वर्ण करते हैं उसके साथ एकरूप हो जाते है ।

प्रभू का स्मर्ण करना हो तो अभी इसी क्षण । एक क्षण के लिए भी मत टालना कौन जाने दूसरे क्षण मौत आती हो ।

जब हम ईश्वर का नाम जप या स्मर्ण करते है तो हम अपनी ही परम दशा का स्मर्ण करते है । अपनी ही आत्मा को आवाज देते है कि प्रकट होजाओ जो मेरे भीतर छीपे हो । सरल चित्त ,वासनारहित , आसक्ति रहित होने पर यह जल्दि हो जाता है । ईश्वर के प्रति निरंतर स्मृति बनी रहे तो सोते-जागते भी व्यक्ति प्रकाश से भरा रहता है ।

मंत्रजाप श्वास-प्रश्वास के साथ करो । चेतना पर किसी नशे का प्रभाव नहीं पड़ता ,बुद्धि पर पड़ता है परंतु दूसरे रूप मे। मंत्रोचार यदि कोई बिना किसी वासना के करे तो तुम्हारे भीतर की चेतना ड़ोलने लगती है । एक अपूर्व नृत्य का समायोजन हो जाता है । चाहे शरीर न भी हिले भीतर नृत्य खड़ा हो जाता है । मंत्रजाप खेल-खेल में प्रारंभ करो वह तुम्हारे प्राणों में उतर जाएगा फिर उच्चारण भीतर से स्वतः ही होने लगेगा । जब मंत्र अपनेआप उठने लगे तो ध्यान स्वभाविक रूप से हो जाएगा , सहज ही समाधी लग जाएगी ।

विचारों से संसार जाना जाता है ,ध्यान से परमात्मा । ध्यान और प्रेम की दशा में समय एवं स्थान तिरोहित हो जाते है अर्थात गौण हो जाते है जैसे मीरा कृष्ण का मिलन । उन भावनाओं में डूबो जो ईश्वर तक लेजाती है । जैसे करुणा सहानुभूति ,मित्रता का भाव ।

ईश्वर या आत्मा को जीया जा सकता है । जाना नहीं जा सकता । वह सब तरफ मौजूद है सब दिशाओं में भरा है । उसे श्रद्धा के , करूणा के , कृतज्ञता के , आनन्द के चेतना के फूल सर्मपित करो ।

ध्यान एवं भक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू है । ध्यान से भक्ति एवं भक्ति से ध्यान स्वतः ही उपलब्ध हो जाते है । तुम्हें जो अच्छा लगे ,जिसमें मन लगे ,जिसका तुम्हारा स्वभाव हो वही करो ।

श्रद्धा जगाने का उपाय है ,छोटे -छोटे श्रद्धा के कृत्यों में उतरना । छोटे -छोटे कार्यो को ईश्वर के भेरोसे करो । सब सोच -विचार छोड़ो । सोच -विचार सिर्फ आलस्य को सुन्दर परिधान पहनाता है ।

बुंद -बूंद चलकर परमात्मा उपलब्ध हो सकता है , बहुत मत सौचो कि मेरी सामर्थ्य ज्यादा नहीं , मैं कैसे पहुंचूगा ।

मौत धन, पद, प्रतिष्ठा सब छीन सकती है पर ध्यान ,प्रेम , प्रार्थना ,पूजा ,अर्चना ,प्रभूसमर्ण नहीं ।

जब तुम रुकते हो , ध्यानस्थ होते हो ,निर्विचार होते हो उस समय तुम अहंकार रहित ,कर्तापन के भाव से रहित ,काम क्रोध ,मद, लोभ ,मोह, ईर्ष्या से रहित हो जाते हो ,यही वह दशा है जिसे ईश्वर चाहता है ।

परमात्मा को भी सारे जगत की परवाह है फिर भी बेपरवाह है । वह सदा राजी है तुम्हें उठाने को लेकिन किसी जल्दि में नहीं है । अगर तुम सौचते हो कि कुछ देर और भटकने का मजा लेना है तो वह बेपरवाह है । इसीलिए तो वह आनन्दित है ,नहीं तो अबतक किस हालत में हो जाता ,पागल होजाता । अस्तित्व बेपरवाह है इसीलिए आनन्दित है । तुम्हें उठाने का पूरा भाव है ,पर अनाक्रमक है । वह आक्रमण नहीं करेगा ,प्रतीक्षा करेगा । जैसे सूरज द्वार पर दस्तक दे रहा है और तुम दरवाजा बंद किए बैठे हो तो सूरज जबरदस्ती अंदर नहीं घुसेगा । ऐसा भी नहीं है कि नाराज होकर वापस लौट जाए । तुम देरी कर रहे हो उससे वह चिंतित नहीं होगा परेशान न होगा । अगर तुम समझ सको दोनों बातें एक साथ । तभी तुम समझ सकोगे कि अस्तित्व आनंद से भरा है । जब तक तुम भी संसार में रहते हुए सन्यस्त न होपाओगे ,परमात्मा तक न पहुंच पाओगे । तुम अभिनेता होजाओ वही परमात्मा के होने का ढ्गं है ।

तुमने कितने ही पाप किये हों ,कितने ही जन्मों तक , तुम परमात्मा को थका नहीं सकते । न ही भोग से तुम चुका सकते हो । वह अब भी आवाज दिये जाता है । वह कभी निराश नहीं होता और अगर तुम जरा शांत होकर सुनो तो उसकी धीमी आवाज तुम्हें सुनाई देती है ,वह आवाज तुम्हारा मार्गदर्शन करती है । भीतर की आवाज सुनने की कला ही ध्यान है ।

परमात्मा को तुम चिंतित नहीं कर सकते ,इसलिए जिस व्यक्ति को भी परमात्मा की प्रतीति होने लगती है ,उसे भी चिंतित नहीं कर सकते है । वह तुम्हारी परवाह भी करेगा और बेपरवाह भी होगा । तुम उसे चिंतित नहीं कर सकते ।

तुम सभी लोगों की परवाह करो पर बेपरवाह भी रहो । कोई अपना दुःख लेकर आए ,पूरी परवाह करो पर उससे चिंतित मत होओ । उसके दुःख से दुःखी मत होओ । क्योंकि ऐसा होने पर तुम उसका साथ न दे पाओगे ,उसका दुःख दूर न कर पाओगे । उसके दुःख को सहानुभूति से समझो ,उसके लिए उपाय करो । कोई तुम्हारा कहा करे तो प्रसन्नता न हो , न करे तो नाराजगी न हो ।

ध्यान है आत्मस्मर्ण और भक्ति है परमात्म स्मर्ण ।ध्यान है इस बात के प्रति बोध कि मैं परमात्मा हूं और भक्ति है इस बात के प्रति बोध शेष सब परमात्मा है । क्योंकि जो मेरे भीतर जीवित है वही सबके भीतर श्वास ले रहा है तो ध्यानी अन्ततः भक्ति पर पहुंच ही जाता है और जो भक्ति से चलेगा ,ध्यान उसके पीछे अपने आप चला आता है ।

सब भांति शब्दों ,सिद्धान्तो और विचारों से शुन्य चेतना ही ईश्वर है । ईश्वर की खोज किताबों में नहीं अपने –आप में है । सारी यात्रा व्यर्थ है । धर्म का कोई मंदिर , किताब या गुंरू नहीं है । जब तक हम इन बातों में भटकते रहेंगें । तब तक हम कभी भी धर्म को नहीं जान सकते ।

अहंकार को मिटाने के लिए दास की भावना से बड़ी कोई भावना नहीं हो सकती । न तो पिता के संबंध में अहंकार गिरेगा ,न प्रेयसी –प्रेमी के संबंध में अहंकार गिरेगा । अहंकार तो सिर्फ दास की भावना में कि मैं गुलाम हूं और तू मालिक है ।

व्यक्ति की काई कामना , ईच्छा या लक्ष्य कभी नहीं होना चाहिए । इसी वक्त मेरे प्राण निकल जाएं तो ऐसा न लगे कि कोई कार्य अधुरा रह गया है । सभी कार्य ईच्छा या लक्ष्य हीन होने चाहिएं । सभी लक्ष्य ईश्वर को सौंप दो , काम क्रोध रोको मत निकाल दो ।

समय के साथ एकता साधने का अर्थ है परमात्मा के साथ एकता स्थापित करना । अच्छा या बुरा जो हो उसमें राजी हो जाने का गुण , कहीं कोई विरोध न हो । बिमारी आ जाए तो बिमारी, बुढ़ापा आजाए तो बुढ़ापा ,मृत्यू आजाए तो मृत्यू । जो भी हो उसके साथ पूरा आत्मैक्य ।

यह मनुष्य के हाथ में है कि वह श्रेष्ठ कर्मो द्वारा पूर्व जन्म के संस्कारों को धो ड़ाले । वीतराग का अर्थ है हमें किसी भी वस्तु से प्रेम या धृणा दोनों न हो , न प्राप्ति की ईच्छा न छोड़ने की इच्छा हो ।

यह असम्भव है कि जो व्यक्ति प्रकृति से प्रेम करते –करते सभी से न करने लगे । प्रमुदित या प्रसन्न रहना ईश्वर की इबादत है । मौत भी आए तो प्रसन्न रहें ।

दूसरी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि हम प्रेम व्यक्त करने के मौके छोड़ देते है पर धृणा व्यक्त करने के नहीं । प्रेम व्यक्त करने का कोई मौका मत छोड़ो धृणा व्यक्त करने के सभी मौके छोड़ दो । मंसूर के एक –एक अंग को काटा जा रहा था । जो कह रहा था ' परमात्मा मैं जीत गयाा , मैं सौचता था कि इतनी क्रूरता के बाद शायद मैं इनसे प्रेम न कर सकूं पर मेरा प्रेम कायम है ।

प्रमुख भाव मैत्री , धृणा ,करूणा , क्रूरता ,प्रमुदिता , उदासी , चिंता आदि है ।यदि शरीर ,विचार एवं भाव शुद्ध हों तो इनकी शुन्यता स्वतः घटित हो जाती है ।

भय मिटाईये , अगर आप इस जमीन पर बिल्कुल अकेले खड़े हों , कोई भी न हो तो भी आप उतने ही आनन्द में में होंगे जितने तब , जब यह जमीन भरी थी । वही व्यक्ति मृत्यू से नहीं ड़रेगा जिसने अकेले होने का आनन्द लिया है । क्योंकि मृत्यू अकेला कर

देती है । क्योंकि मौत अकेलापन देती है , सबकुछ छीन लेती है । कुछ लोगों को अकेलापन भय देता है ।

जहॉं भय है वहां प्रेम एवं ईश्वर नहीं होता । लोग ईश्वर का भय दिखाकर न जाने क्या करवाते रहते है । जबकी ईश्वर प्रेम देता है ,आनन्द देता है , भय नहीं ।

सुख की आशा ही आत्मा का बंधन है । वास्तव में सुख की तरह ही दुःख को भी प्रसन्नता से स्वीकार कर उसमें जीना एक कला एवं लय है । अभ्यास से ही सुख दुःख में एवं दुःख में बदल जाता है । अर्थात दुःख में जीना एक आदत बन जाता है । जब व्यक्ति स्वयं को अकर्ता एवं परमात्मा को कर्ता मान लेता है । तो सभी दुःख सुख में बदल जाते है । वह व्यक्ति कर्म मुक्त होजाता है । उस व्यक्ति की गर्दन कटती है तो वह सौचता है यह तो कटनी ही थी । कोई भी दु,ःख होता है तो वह सौचता है कि यह तो होना ही था। उसे किसी पर क्रोध नहीं आयेगा , असन्तोष नहीं होगा । जो भी होता है वह परम नियती के वशीभूत होता है । उसका प्रतिरोध समाप्त होजाता है । वह परम शांति को प्राप्त होता है । जो व्यक्ति सुख या दुःख का चयन करता है । वह परम शांति को उपलब्ध नहीं होता । जिसने चयन छोड़ा वही शांत है ,संतुष्ट है ।

शरीर में जितनी प्राण वायू जाती है ,उतना ही शरीर शुद्ध , निर्मल एवं पारदर्शी होता है । ब्रह्ममूहूर्त में गहरी श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए । यदि इस कार्य को सहज बना लिया जाए तो अति उत्तम रहेगा । आप की श्वास जितनी गहरी (अर्थात पेट तक) होगी उतने ही आप प्राणवान रहोगे , आयू एवं बुद्धि का विकास होगा । श्वास छाती से नहीं सदैव पेट से जैसे छोटा बच्चा लेता है ।

प्राण से ही शरीर एवं मन दोनों को गति मिलती है । उपवास ,फलाहार एवं रात्रि में दूध सेवन से नाड़ियों की शुद्धि एवं प्राणों में वृद्धि होती है ।

हृदय पंप करता है ,फलस्वरूप खून का प्रवाह ऊपर की और कम एवं नीचे के अंगो में अधिक होता है । जानवर झुक कर चलते है अतः रक्त की धारा उनके मस्तिष्क की और बहती है । आदमी खड़ा रहता है इसलिए उसके मस्तिष्क में रक्त कम पहूंचता है जिससे उसके मस्तिष्क में सुक्ष्म ज्ञान तंतुओं का विकास हो पाया । जबकि पशुओं में खुन की तेज धारा से वे तंतु टूट जाते है । यही कारण है मनुष्य की बुद्धि के विकास का । मनुष्य और पशु की नींद में कोई अंतर नहीं है अंतर होता है जागने पर , व्यवहार में , बुद्धि के उपयोग में । जिन मनुष्यों के तंतु जितने सुक्ष्म होते है वे अधिक से अधिक तकिये का उपयोग करते है । क्योंकि उनके बिना उन्हें नींद नहीं आ सकती । तकिया न लगाने पर सिर नीचा हो जाता है और रक्त की धारा तीव्रता से मस्तिष्क में प्रवाहित होती है जिससे मस्तिष्क के तंतुओं को विश्राम नहीं मिलता ।

जितनी भीड़ होगी उतनी ही अशुद्ध वायू एवं विचार तरंगे होंगी । इसलिए भीड़ थकाने वाली होती है । वह प्राण ऊर्जा कम कर देती है । इसीलिए साधू सन्यासी एकान्त में पहाड़ों पर जाते है ।

प्राण शक्ति विकास के बिंदू – (1) सूर्य की तरफ पीठ करके बैठें (लेकिन अधिक समय तक बैठने से ऊर्जा अधिक एकत्र हो जाती है जो शरीर को नुकसान पहूंचाती है ,क्योंकि सूर्य ऊर्जा का सबसे शक्तिशाली स्त्रोत है।) (2) एक लय एवं ताल से श्वसन किया करना (इससे सूक्ष्म शरीर विकसित होने लगता है । यह शरीर के चारों तरफ फैल जाता है।) उच्च कोटि के योगियों के एक फिट तक आभा या सुक्ष्म शरीर फैला रहता है । यदि कोई उनके निकट जाए तो उसका मन घबराने लगता है, रक्त चाप कम या अधिक हो जाता है । वह अधिक समय वहां नहीं ठहर सकता । (3) प्राणयाम एवं गहरी श्वास (पेट से) लेना । (4) शुद्ध जल में एक घण्टा पॉंव रखकर बैठना –जल में प्राण शक्ति होती है । इससे स्फूर्ति एवं उल्लास बढ़ता है । (5) कच्ची जमीन एवं पानी में या भीगी मिट्टी पर चलना या पॉंव रखकर बैठना । इससे प्राण शक्ति में वृद्धि होती है एवं शरीर स्वस्थ रहता है । रक्त स्वच्छ रहता है ,नैत्र ज्योति बढ़ती है, हृदय रोग कम होते है । कुछ लोग कई दिनों तक भूमि में खडड़ा खोद कर बैठ्ते है । वे भूमि से प्राण शक्ति ग्रहण करते है । उन्हें भूख –प्यास भी नहीं लगती । भू–प्राण शक्ति, इच्छा शक्ति एवं विचार शक्ति को भी प्रबल करती है ।योग में जल प्राण शक्ति को सर्वोत्तम एवं महत्वपूर्ण बताया है । क्योंकि जल ,सूर्य , भूमि , एवं वायू तीनों को संपर्क में रहता है । तीनो की शक्ति उसमें मौजूद रहती है । ब्रह्ममूहूर्त में तांबे के जल का प्रयोग भी लाभदायक रहता है । जल प्राण शक्ति से चित्त की एकाग्रता ,प्राणायाम, ध्यान , धारणा में भी सहायता मिलती है ।

जिस व्यक्ति में प्राण शक्ति अधिक रहेगी वह उल्लासमय , प्रंसन्न एवं जीवंत रहेगा । उसके पास अधिक से अधिक लोग बैठना पसंद करेंगें । कम प्राण शक्ति का व्यक्ति दूसरों के पास बैठकर उनकी शक्ति खींचता है इसलिए उसके पास लोग बैठना पसंद नहीं करते । उसके विचार भी निराशावादी होते है । नीच कर्म करनेवाले , नीच विचार वाले ,रोगी ,इन सब में प्राण शक्ति कम होती है । धार्मिक लोगों में प्राणशक्ति अधिक होती है । (6) वृक्षों में भी प्राण शक्ति होती है ,उनके नीचे दिन में बैठना चाहिए । केवल पीपल ही एक एसा वृक्ष है जो रात और दिन ऑक्सीजन देता है । बड़ के वृक्ष में एक द्रव्य होता है जो अत्यधिक प्राण शक्ति देता है । अतः दोनों वृक्ष पूजनीय है ।

नाभी से ही सभी जगह प्राण शक्ति का संचार होता है एवं पूरे शरीर का पोषण होता है । इसीलीये नाभी पर ध्यान किया जाता है इससे प्राण शक्ति में शीघ्र वृद्धि होती है ।

यूवा व्यक्ति के लिए आठ घण्टे काफी है । उतनी देर उसका शरीर पुर्ननिर्माण कर लेता है । अर्थात मरे हुए सैल फिर बन जाते है । व्यक्ति प्रत्येक सात वर्ष में नया बन जाता है ।

भोजन गर्म हो तो शीघ्र पचता है । भोजन की गर्मी और जठराग्नि मिलकर उसे आसानी से पचादेतें है । ठण्डी चीज एवं ठण्डा भोजन देर से पचता है । उसे पचने में जितनी देर लगती है उतनी ज्यादा देर तक नींद आयेगी क्योंकि जबतक भोजन पच न जाए मस्तिष्क को ऊर्जा नहीं मिलती शरीर की आवश्यकता पूर्ती होने पर जो ऊर्जा बचती है। वह मन एवं बुद्धि को मिलती है जो सोच विचार में खर्च होती है । फिर जो ऊर्जा बचती है वह आत्मा को मिलती है ।

बच्चा गर्भ में 24 धण्टे सोता है । यदि वह जाग जाए तो गर्भपात हो जाता है । नींद में शरीर का विकास होता है । ज्यों –ज्यों बच्चा बड़ा होता है । नींद कम होती चली जाती है । फिर एक अवस्था में वह आठ घण्टे पर स्थिर हो जाती है । यह जीवन का एक बड़ हिस्सा होता है । उसके बाद यह कम होने लगती है । जब आठ घण्टे से कम नींद आने लगे तो समझो मृत्यू की तरफ पहला कदम उठ गया है ।

लामाओं में यदि सिद्धियां है तो उनके देश की इतनी र्दुदशा क्यों है ?इसके उत्तर में उनका कहना है कि जो बात पूर्व निश्चित है वह अवश्य होगी । उसे टाला नहीं जा सकता ।

ब्रह्मज्ञान एवं मोक्ष के लिए योगियों को प्रतीक्षा करनी पड़ती है । उनकी उपलब्धी सहज नहीं है । यह अवस्था परमेश्वर की करूणा में अनुग्रह होने पर ही दिव्य साधकों एवं योगीयों को उपलब्ध होती है । नये शरीर में उन्हें ज्ञान कब होगा ,यह भी ईश्वर द्वारा निर्धारित होता है । एक क्षण मोह की आग में उनकी सारी आध्यात्मिक सम्पत्ती जल कर राख भी कभी होजाया करती है । चित्त जिस विषय में एकाग्र हो ,जिस विषय के अध्ययन में रूची हो ,वही ज्ञान हम पूर्व जन्म में अधूरा छोड़कर आये थे ।

तुम जो हो , जैसे हो , वैसे ही बने रहो । वृक्षों की तरह जो सदैव आनन्दित रहते है । कुछ और बनने की कोशिश संघर्ष को जन्म देगी तब न तुम रहोगे न आनन्द न ही स्वर्ग । स्वयं को चुनो , स्वयं को स्वीकारो । स्वयं के अतिरिक्त कोई अन्य न किसी का आदर्श है न हो सकता है । अनुंकरण आत्मघात है । याद रखो परतंत्रता में परमात्मा कभी नहीं पाया जा सकता है।

अज्ञान भी आत्मज्ञान में बाधा है ।और ज्ञान भी बाधा है । एक एसी अवस्था जहां ज्ञान है न अज्ञान है उस अन्तराल में ज्ञान स्वयं अर्विभूत होता है , वही समाधी है ।

न भोग में शांति है न त्याग में शांति है , चित्त की अनुपस्थिति में ही शांति है । चित्त को समझो उसके प्रति जागरूक रहो ,उसकी क्रिया –प्रतिक्रिया , राग –द्वेष ,आसक्ति –अनासक्ति के प्रति जागरूक रहो एसा करते –करते चित्त विलीन हो जाएगा । यह कार्य बिना किसी तनाव एवं एकाग्रता के करो । शांतिपूर्वक ,आनन्दपूर्वक उससे परिचय प्रगाढ करो । अज्ञान से मुक्ति ज्ञान से होती है ,ज्ञान से मुक्ति ध्यान से होती है । फिर जो बचता है वही मोक्ष है ।

साम्राज्य छोड़ना आसान है परन्तु ज्ञान एवं श्रेष्ठता का अहंकार छोड़ना कठिन है ।

जो तृष्णा को जीत लेता है उसके शोक उसी तरह गिर जाते है जैसे कमल से जलबिंदू । तृष्णा की निंदा करने से कुछ बोध नहीं होता उतरो ,आँख खोलकर तृष्णा को देखो । कितनी बार हारे हो , सदा हारे हो । जीत कभी हुई नहीं और जब तुम्हें लगता है जीत हो रही है तब ध्यान रखना तम्हारी नहीं हो रही है । इसलीए जब हार होगी तुम्हारी नहीं होगी । (अर्थात ईश्वर की होगी) ।

यह जीवन अपने नियम से चल रहा है । कभी –कभी संयोग वश तुम नियम के साथ पड् जाते हो और तुम्हें अच्छा लगता है । जब–जब साथ छूट जाता है ,तब –तब दूःख और पीड़ा होती है । तुम सदा नियम के साथ हो सकते हो फिर महासुख है, आनन्द है । सदा नियम के साथ होने का अर्थ है जो होगा उससे अन्यथा नहीं चाहूंगा । दुःख हो या सुख सबको सबको सहजता से अंगीकार करना । आए हवा का झोंका ठीक , न आए ठीक । उजाला हो या अंधेरा जो भी आता हो आए मैं तो हूं ही नहीं क। ऐसी भाव दशा में फिर कहां दुःख । तुम रिक्त हो जाओ ,शुन्य हो जाओ बीच में न आओ इस भाव दशा को ही बुद्ध ने निर्वाण कहा है । जो नियम के विपरीत वो वैसे भी नहीं होगा ।

संसार की जो तृष्णा है उसे समझो ,जागो ,होंश से भरो देखो तृष्णा तुम्हें कैसे चलाती है । उसे देखते –देखते ,समझते –समझते वह एसे विलीन हो जाएगी जैसे कमल से जल बिन्दू तृष्णा की जड़ है मूर्छा ,बेहोशी आँख बंद किये जीना ,अचेतना में जीना । ध्यान में जागो होश से रहो । जो भाव आये उसे दबाओ मत उसे जागते हुए ,देखते हुए ,महसूस करते हुए करो । चाहे क्रोध हो, काम हो । तुम इसे देखो यह क्यों उठ रहा है । इससे पहले उठा था। जब हमें

क्या मिला । जैसे –जैसे तुम्हारी समझ गहन होती जाएगी । तुम पाओगे वासना या तृष्णा का धुंआ उठ गया । जिस क्षण तुम संसार एवं ईश्वर से मांगने का भिक्षा पात्र तोड़ देते हो । सन्यास घटित होजाता है ।

मन के पार उठो , सोचने के पार चलो , विचारों से मुक्त हो जाओ । तुम्हें तुम्हारी आत्मा एवं परमात्मा दोनों के दर्शन हो जाएंगें ।

तपस्या के नाम पर न तो दुःख पैदा करने की जरूरत है ,न सुख खोजने की जरूरत है । दुःख या सुख परमात्मा ने जितना जरुरी समझा देदिया , उसका सहजता से उपयोग करलो , उसको समझलो , उन्हीं सूत्रों से मुक्ति है ।

भूत को छोड़ो , भविष्य को छोड़ो और वर्तमान को भी छोड़ो (अर्थात इनपर विचार मत करो)तभी तुम मुक्त मानस होओगे , जन्म एवं जरा को नहीं प्राप्त होओगे ।

जब तुम यह धोषणा करते हो कि मैंने धन त्याग दिया तो तुम परोक्ष रूप से यह घोषणा कर रहे हो कि धन तुम्हारा था । धन छूटे यह महत्वपूर्ण नहीं है । धन तुम्हारा था यह भाव छूटना महत्वपूर्ण है ।

कोई भी चोट व्यक्ति को नहीं उसके अहंकार को लगती है । जहां अहंकार की रेखा नहीं हो वहां चोट कैसे लगेगी ।

तुम्हारी जैसी स्थिति है उसे स्वीकार करो उसी स्थिति में तुम्हें प्रभू का भजन , कीर्तन , ध्यान करना है । अगर तुम नर्क में हो तो उसे तुम सहजता से स्वीकार करो । तुम्हारी स्वीकृति के साथ वह नर्क स्वर्ग मे बदल जाएगा ।

जवान में शक्ति होती है और वासना भी क। बूढ़े में वासना होती है शक्ति नहीं । जवान चाहे तो शक्ति से वासना को दबा सकता है , बूढ़ा नहीं 45 वर्ष बाद शक्ति कम एवं वासन अधिक हो जाती है । जो निरंतर बढ़ती है एवं शक्ति घटती है ।

अपनी वासना को दबाने में अपनी शक्ति का व्यय मत करो , उस ताकत को होश बनाओ , स्मृति बनाओ तभी वासना जाएगी , दबाने से नहीं ।

तृष्णा या वासना रहित ,ध्यान को उपलब्ध व्यक्ति निर्भय होजाता है । कुछ भी पाने की इच्छा मत करो ,न ज्ञान ,न सत्य ,न ईश्वर न मोक्ष ,उसी समय तुम समाधी को उपलब्ध हो जाओगे । एकदम र्निउद्वेश्य होजाओ , जैसे फूल खिलता है र्निउद्वेश्य ,सूर्य उगता है र्निउद्वेश्य । किसी ने किसी से नहीं पाया है । जिसने पाया है अपने भितर ही पाया है ।

जब शरीर की जरूरतें पूरी हो जाती है तो मन की पैदा होती है । जैंसे भूखे व्यक्ति को संगीत की याद नहीं होती । एक बार अपने में डूबने का स्वाद आगया तो फिर तूम्हें किसी की जरूरत नहीं होगी , तुम स्वतः ही पालोगे ।

संसार की किसी भी वस्तु को पाने के लिए तुम्हें दौड़ना होगा परन्तु परमात्मा को पाने के लिए दोड़ना मत उसके लिए शांत मनोदशा चाहिए । जब तुम बहुत तेजी से होते हो तो तुम भागते हो समय भी भागता है । आयू जल्दि पूरी हो जाती है । आहिस्ता चला आयू भी आहिस्ता चलेगी । जीने का आनन्द आयेगा । तुम्हें परमात्मा को पाने के लिए भागने की नहीं रुकने की जरूरत है । परमात्मा तुम्हें स्वयं ढूंढलेगा । शांत होजाओ , ध्यानस्थ होजाओ । परमारत्मा स्वयं तुम्हें खोजता हुआ चलाआएगा । दूर आकाश से उसके हाथ तुम्हारे सिर पर आजाएंगें । जिसको भी ईश्वर मिला है रुकने पर मिला है , दौड़ने से नहीं ।

दुःख और निराशा को आने दो उन्हे अंगीकार करो , उनका स्वागत करो , कहो आओ बिराजो क। सुख और आशा के साथ कुछ दिन रहलिए अब दुःख और निराशा में भी समय बिताकर देखो । होसकता है जो आशा से न हो सका वह निराशा से हो जाए ।

सबसे पहले अपने आप से प्रेम करो । जो अपने–आप से प्रेम नहीं करता ,वह किसी से भी प्रेम नहीं कर सकता ।

हमेशा देते रहो देने से अनंत गुणा मिलता है । जरूरी नहीं मंदिर में दो ,गरीब को दो या ज्ञानी को दो , अपने मित्र , पत्नि ,पुत्र एवं पड़ौसी इन्हें भी दे सकते है । इनका हक पहले है ,परन्तु भाव दशा देने की रहे ।

हम दूसरों पर इसलिए विचार करतें है कि हम अपने आप पर विचार करने से बच जाएं ।

जो व्यक्ति ध्यान नहीं कर रहा है वह आत्मघात कर रहा है । वह आत्मा को न पा सकेगा । उसका जीवन व्यर्थ हो जाएगा ।

एक क्षण में संसार मिट सकता है । परमात्मा सामने आ सकता है , गहन तीव्रता चाहिए । सब दाव लगाने की क्षमता चाहिए ।

एक प्रयोग सिर में दर्द हो रहा हो कतिो यह धारणा छोड़ दो कि वह मिट जाए उसे स्वीकार कर लो । निर्विचार भाव से उसे महसूस करो धीरे –धीरे वह स्थान कम होता चला जाएगा अन्त में मिट जाएगा ।

आँखें बंद करके बैठो पहले अंधेरा ही अंधेरा दिखेगा फिर कमशः प्रकाश बढ़ता जाएगा । एक दिन तुम पाओगे अपूर्व आभा वही आत्मा है , वही परमात्मा है ।

तुम प्रेम करो पत्नि से ,मित्र से ,बच्चों से । इसीसे प्रेम भाव बढ़ेगा । तभी तुम्हारा ईश्वर से प्रेम बढ़ेगा ।

जो आँख झुकाकर चलता है वह रूप पर कभी संवर नहीं पा सकेगा । जब रूप को तुम पूरी खुली आँखों से देखोगे ,भीतर कोई भाव न उठे , मन वैसे का वैसे निर्विचार रहे तभी रूप पर संवर होगा ।

दाहिने कान पर ध्यान लगाकर अनाहत नाद सुनो वह परमात्मा का संगीत है । एक बार आनन्द आ गया तो परमात्मा तक पहुंच जाओगे ।

शरीर के संवर का अर्थ है । अकेले रहने की क्षमता आ जाना । एकान्त में जीने में आनन्द आना । वाणी के संवर का अर्थ है जब बहुत जरूरी हो तभी बोलो । न किसी के विचार जानने की इच्छा हो न अपने बताने की । जैसे तार में कम से कम शब्दों का प्रयोग होता है और सारी बात आ जाती है वाणी का भी ऐसा ही उपयोग हो। मन के संवर का अर्थ है व्यर्थ न सोचना

एकान्त मौन और ध्यान जो इन तीनों बातों से भर जाए उसके जीवन में समाधी धटित हो जाती है । जो संतुष्ट है , अकेला है वही भिक्षू है । वह तो शतप्रतिशत जानता है , वही बोलता है अन्यथा नहीं । तुम ईश्वर के बारे में जानते नहीं धन्टों दूसरों को बतलाते हो । उतना ही बोलो जितना जानते हो यही मौन का रास्ता है ।

एक शरीर एवं मन का स्वभाव होता है , एक आत्मा का । जब शरीर एवं मन शांत होते है तब आत्मा का स्वभाव प्रकट होता है ।

कोई मोह न रहे , अशुभ तो जाए ही जाए ,शुभ का मोह भी जाए ,पाप तो जाए ही जाए पुण्य का माह भी जाए । संसार में सुं,ख भोग की आसक्ति तो जाए ही जाए मोक्ष की आसक्ति भी चली जाए तभी परम सुख की प्राप्ति होगी ।

बुद्व परम्परा में संकल्प का अर्थ होता है कि या तो बुद्व होकर रहूंगा या मौत आजाए । इन दोनों के मध्य कोई विकल्प नहीं होगा ।

जो मेरी बात मान रहा है उसके अनुंसार(अर्थात धर्म के अनुंसार)चल रहा है ,वही एक मात्र मेरी पूजन करता है ।

उसकी मर्जी से जीने में सुख है उसकी मर्जी से मरने में सुख है । बिना उसकी मर्जी के न जीने में सुख है न मरने में ।

आत्मा का दर्शन नहीं अनुभुति होती है , जो स्वयं है उसका दर्शन कैसे होगा।

तुम्हारी चेतना जब तब भटकती है जब तब उसे ठहरने का स्थान मिल जाए । कोई विचार, कोर्ह दृश्य , कामना या वासना । जब सब कामना विसर्जित कर दी गई उसे बैठने का कोई स्थान न मिला तब वह अपने पर लौट आती है ।

हमारी वृत्ति में कहीं रस का कारण है , विषय–वस्तु में नहीं । जैसे एक कुत्ता सूखी हडडी को चूसता रहता है जिससे उसकी जीभ में खून आ जाता है और वह हडडी का स्वाद समझता है । भोजन में स्वाद नहीं जीभ में होता है । भोजन में होता तो बुंखार में भी भोजन अच्छा लगता ।

जीवन का आधारभूत नियम – अपनी शक्ति गलत को छोड़ने में मत लगाओ , सही को अपनाने में लगाओ। गलत अपनेआप छूट जाएगा ।

तुम अपने होंस्ट समझो या गैस्ट ,तुम्हारे पर है । परन्तु बेहतर होगा पहले अच्छे गैस्ट बनो ,होस्ट ईश्वर स्वतः बना देगा ।

क्या खाना है , क्या पहनना है , कैसे जीना है इन व्यर्थ बातों में घ्यान मत दो । तुम सिर्फ ध्यान करो । अगर तुम्हारा मन शांत और जागरुक होगा तो तुम खुद ही पाआगे कि नियम अपने आप उसके पीछे आने लगेंगे ।

मंजिल पर सभी गुरु एक है मार्ग पर नहीं । प्रहलाद की भक्ति , मीरा का नृत्य बुद्ध का मौन , अंत में पहुंचकर एक है ।

कोई भी सुन्दर वस्तु या स्त्रिी हो कुछ ही दिनों में साधारण हो जाती है और साधारण अच्छि लगती है क्योंकि वह तुमसे दूर है । मन को हमेशा नया चाहिए ।

चूकते हम इसलिये न थे कि स्वर्ग दूर था । चूकते हम इसलिए है कि हम स्वर्ग में थे लेकिन उसे स्वर्ग माना नहीं । फूल को देखो, उगते सूरज को देखों , बच्चों को देखो ये स्वर्ग ही तो है ।

समाधी तभी होगी जब सभी कामनाएं समाप्त होगी । चाहे वह धन की हो ,धर्म कीे हो , या माक्ष की ,सभी समान है

आदतें मालिक हो जाए यह सबसे बुरी बात है । मालिक शरीर के तुम हो आदतें नहीं । जीवन में सीर्फ आदतें हीं आदतें रहजाए तो आत्मा खो जाती है । मालिक बनने के लिए आदतों को जीस क्षण छोड़ दिया पीछे मुड़कर मत देखो ।

सारा शरीर सो जाने पर भी आत्मा –चैतन्य जागता है । काशी नरेश ने गीता–पाठ करते हुए पूरा ऑपरेशन करवालिया । उन्होने सारा ध्यान गीता पाठ पर केन्द्रित रखा । अर्थात गीता को बोध से पढ़ा ।

बुद्ध कहते है श्वास के निरंतर साक्षी रहो । उसके आने –जाने रुकने के साक्षी रहो । अनुभव करो श्वास जब नासपुटों को छुए तो तुम मौजूद रहो ,भीतर जाए तो उसके साथ तुम भी भीतर जाओ । नाभी स्थल तक उसका पीछा करो । श्वास रुके तुम भी रुक जाओ । इसी से तुम साक्षी भाव को प्राप्त हो जाओगे ।
श्वास तुंम्हारी आत्मा और शरीर का सेतु है । उससे ही शरीर एवं आत्मा जुड़े है । अगर तुम श्वास के प्रति जागरुक हो जाओगे तो पाओगे कि शरीर बहुत पीछे छूट गया है । जो सदा श्वास के प्रति जागरुक रहता है वह मरता नहीं है । क्योंकि जब मृत्यू के समय श्वास जाकर वापस आयेगी तोभी वह देखता ही रहेगा तो मरेगा कैसे ।

आकाक्षां साच–समझकर करना , जो करोगे पूरी होगी । बाद में न कहना कुछ और चाहते तो अच्छा होता ।

प्रमाद में मत लगे रहो , कामरति का गुणगान मत करो । प्रमाद रहित व ध्यान में लगा पुरुष विपुल सुख को प्रांप्त होता है ।

तुम्हारा हाथ काट दे , आँख फोड़दे तो भी तुम जिन्दा रहोगे । क्योंकि यह तुम्हारा स्वभाव नहीं है । कुछ ने श्वास छोड़दी क्योंकि श्वास भी स्वभाव नहीं है । ध्यान में जब व्यक्ति शून्य में उतरता है । तो शुन्य निर्विचार हो जाता है । वही तुम्हारा स्वभाव है , तुम हो । कि ध्यान या समाधी में परमात्मा भी याद नहीं रहता ।

जैसे –जैसे तुम्हारा होश बढ़ेगा ,तुम्हें लगेगा कि तुम्हारा कुछ भी नहीं है । समाधी तक तुम्हें अपना बोध रहेगा , फिर वो भी नहीं रहेगा । समाधी तक आत्मा फिर अनात्मा अर्थात बून्द सागर में गिर गई ।

अपने आप को दिया गया तीन बार सुझाव परिणाम में बदल जाता है ।
ठीक होने के लिए ज्ञान नहीं ध्यान जरुरी है । ध्यान से ज्ञान स्वतः आता है , ज्ञान से ध्यान नहीं ।
जो चाहते हो वह मत करो (अर्थात जो कामना है वह मत करो) फिर जो चाहोगे वह कर सकोगे । (अर्थात जो कामना है वह स्वतः ही पूरी होजाएगी)

कोई भी कार्य सफलता के लिए पूरी चतुराई से करो पर सफलता की आकांक्षा ,इच्छा, आग्रह मत रखो और सफल होने पर अंहकार भी महसूस मत करो । यह मानो यह विजय तुम्हारी नहीं ईश्वर की है। हारो तो सोचो ईश्वर की ईच्छा है एवं मेरे हित में है । ज्यों ही जीतने की ईच्छा कम होती चली जाएगी ,विजय स्वतः होती चली जाएगी । जितनी खेल में विजय की आकांक्षा अधिक होगी ,खेल में हार की सम्भावना अधिक होगी । खेल खेलने में पर्याप्त है यह भाव विकसित करो । क्योंकि विजय के लिए शांत मन ,एकाग्रता आवश्यक है । विजय की

प्रबल इच्छा या हार का भय उसे समाप्त कर देता है । जो जीतने के लिए खेलता है उसकी हार निश्चित है ,क्योंकि वह तना हुआ है ,परेशान है , उसे जीतने की जल्दि है , वह हार जाएगा ।
लोभ दुःख है एसी प्रतीती होजाए इसका सुगम उपाय यही है कि किसी बुद्ध पुरूष के पास सतसंग करो ।

आसान सिद्धि – न तो शरीर को बहुत हिलाएं –डूलाएं , एक ही आसन पर बैठें , क्योंकि जब शरीर हिलता है तो मन भी हिलता –डूलता है । सब साथ जुड़े है । शरीर को स्थिर रखने से मन को स्थिार रखने में सहायता मिलती है । हो सके तो रात में भी एक ही करवट सोना चाहिए । ताकि रात में भी चित्त न हिले अर्थात आसन का अभयास रात में भी हो सकता है ।

जो चीज चाहोगे विपरीत चीज मिलेगी । जीवन चाहोगे तो जल्दि मरोगे । धन चाहोगे तो निर्धन रहोगे । , यश चाहोगे तो अपमान मिलेगा । इसलिए चाह को समझो अन्यथा दुःखी होते रहोगे । जीवन चाहते हो मृत्यू के लिए राजी होजाओ ,वास्तविक जीवन मिलेगा । धन चाहते हो तो निर्धन होने में राजी हो जाओ । यश चाहते हो त ो सम्मान की आशा मत करो ं। तुम जितना सम्मान चाहोगे उतने ही अपमानित होने लगोगे । क्योंकि तुम्हारा अहंकार प्रबल होगा उसपर जराभी चोट लगने पर बड़ा दुःख होता है ।

तुमने न ह्रदय से माला फेरी , न मंदिर गए, न परमात्मा को पुकारा । ह्रदय से पुकारा होता तो अवश्य मिलजाता , नहीं मिला यह काफी प्रमाण है कि ऐसे ही खिलवाड़ करते हो ।

व्यर्थ बात मत करो , बिना पूछे सलाह मत दो , बिना अनुभव सलाह मत दो ।

सुख तभी होगा जब तुम्हारे विचारों एवं जीवन में तालमेल होगा ।

अपने आप से मैं कौन हूं का जवाब बार–बार पूछने से एक दिन जवाब मिल ही जाता है । मैं कौन हूं अगर यह प्रश्न बैचेन करदे तो तो हम बहुत शीध्र जीवन के द्वार पर पहुंच सकतें है ।
जब झंझटों से मुक्ति या सुख के बोध से सन्यास लिया जाता है तो आपका सन्यास संसार का ही एक रूप है । वर्षो सन्यासी रहने पर भी कुछ न होगा ।

संसार में दुःख नहीं है दुःख लोभ या आसक्ति में है । तुम संसार छोड़कर लोभ बचालेते हो तो तुमने जहर बचा लिया केवल बोतल फैंक दी ।

लोगों को देखकर काम, क्रोध , लोभ आता है । यह बात गलत है ये तुम्हारे अन्दर पहले से ही मौजूद है जो बाहर आता है । लोग बाल्टी की तरह है , जो तुम्हारे भीतर है उसे बाहर लातें है । इसमें बाल्टी का क्या कसूर । भीतर कुछ न होगा तो बाल्टी खाली ही लौट आयेगी ।
अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म है , ज्ञानी ज्ञान दिखाने लगता है , फकीर फकीरी दिखाने लगता है । जिस दिन व्यक्ति यह समझ लेता है कि मैं शून्य हूं और अपने इस शून्य से राजी हो जाता है उसी दिन अहंकार समाप्त हो जाता है ।
त्याग का अथ वस्तु का त्याग नहीं ,उसके प्रति ममत्व एवं अहंकार का त्याग है । जब तक जीवन है वस्तु की अपेक्षा तो अनिवार्य है । तुम वस्तु त्यागने पर ध्यान मत दो एवं वस्तु संग्रह का भाव भी मत लाओ ।

सत्य एवं धर्म पर इतना अटूट श्रद्धा एवं विश्वास रखो कि देर –सवेर जीत उसी की होगी । कुछ करने की आवश्यकता नहीं है । सत्य अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ है । तुम इतना ही करो शांति रखो , धैर्य रखो , ध्यान रखो ,सब सहो , सब सहना साधना है । श्रद्धा को इस अग्नि से भी गुजर जाने दो । यह अपूर्व अवसर है ,एसे अपूर्व अवसर पर ही कसौटी होती है । इसके बाद जो श्रद्धा निखरेगी वह ज्योर्तिमर्य होकर प्रकट होगी ।

चालीस की उम्र आते –आते झंझट चालू हो जाते है । तनाव , समस्याएं, बीमारियां चालीस के बाद आने लगती है ।

अगर तुम अपनी ऑखों में उज्जवल हो तो सारी दूनियॉँ तुम्हें कुछ भी कहे ,तुम चिंता मत करना । अगर तुम अपनी ही ऑँखों में उज्जवल नहीं हो तो दुनियॉँ तुम्हें कितनी ही पूजती रहे उसमें कुछ सार नहीं है । असत्य आज नहीं तो कल खुल ही जाएगा ।

तुम सम्मान दो कि अपमान इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता दोनों बराबर है । मेरी प्रतिष्ठा तुम पर आधारित नहीं है ,मेरी प्रतिष्ठि आत्मप्रतिष्ठा है । मेरी जड़ें मेंरे भीतर है । तुम में मैं रस नहीं लेता इसलिए अगर तुम रस न दो तो मेरी कोई हानी नहीं होती ।

दूध से कामुकता बढ़ती है इसलिए बच्चों को तभी तक पिलाना चाहिए जब तक काम केन्द्र जाग्रत नहीं हो जाता । जानवर के बच्चे बड़े होनेपर दूध नहीं पीते । दूध सात्विक बन सकता है पर जब काम केन्द्र से जाग्रति ऊपर बढ़ना चालू होजाए । फिर वह कामुकता नहीं बढ़ाएगा । काम केंद्र पर ध्यान करने से ऊपर की यात्रा चालू हो जाती है ।

मांस खाने वाला अपनी आत्मा को नीचे की तरफ लेजाता है । ऊपर की तरफ नहीं । ऋषियों ने दूध को परमारहार कहा है पर उस यात्रा के प्रारम्भ होने के बाद । फलों एव सब्जियों से आया हुआ भोजन चेतना को ऊपर लेजाता है । जानवरों की दूनिया से आया हुआ भोजन नीचे की ओर ।

आपके वस्त्र जितने कसे हुए होंगे उतनी ही आत्मा की नीचे की और प्रवृत्ति होगी । शरीर को जीतना रिलेक्स रखेंगें उतनी ही ऊपर की और । इसीलिए संत ढ़ीले एवं सूती कपड़े पहनते है । नीला एवं हरा रंग शांति देता है ,लाल एवं अन्य अशांति देते है ।

एक विश्वास की अवस्था है इसे तर्क से तोड़ो अर्थात विचार से तोड़ो फिर इस विचार की अवस्था को भी निर्विचार से तोड़ो तो समाधी घटित होगी ।
यदि अशांत व्यक्ति माला जपता है , पूजा करता है उसका कोई मूल्य नहीं । यदि वह शांत होकर कोने में बैठ जाए कुछ भी न करे तो बहुत कुछ हो सकता है ।

ईश्वर प्रकाश नहीं अंधकार है जो सदैव बना रहता है । जो व्यक्ति जाग्रत अवस्था में रहता है उसे समस्या के बारे में सौच–विचार नहीं बल्कि सीधा समाधान प्राप्त होता है ।

लोग जहां भी खड़े है ,सिवाय मृत्यू की प्रतीक्षा के लिए ही खड़े है । उनसे कहा जाता है माता–पिता , पुत्र,पत्नी इनके लिए जियो । दूसरे के लिए जीना बहुत गहरे अर्थ में अर्थपूर्ण नहीं हो सकता । जो अपने लिए जीने मे समर्थ है वही दूसरे के लिए जी सकता है । जो अपने से प्रेम करता है वही दूसरों से करेगा । जो अपने आनन्द में मस्त है ,वही दूसरों को आनन्द देगा ।

नगें खड़े होना आसान है , उपवास आसान है , प्रिय जनों को छोड़ना आसान है ,धन–सम्पत्ती छोड़ना आसान है । पर अपने ऊपर जमाई हुई ज्ञान की परतों को छोड़ना , श्रेष्ठता के अभिमान को छोड़ना । कर्तापन के अभिमान को छोड़ना कठिन है । इनको केवल ध्यान से ही छोड़ा जा सकता है ।

निर्णय चेतना से आते है , मन से नहीं ,विचारों से नहीं ।आपके विचार आपके नहीं है वे सब दूसरों के उधार लिये हुए है । किताबों या अन्य माध्यमों से । आपकी चेतना ही केवल आपकी है । उसमें समस्त ज्ञान पहले ही विद्यमान है । आपके ज्ञान संग्रह की कोई आवश्यकता नहीं है । एक एसी चित्त दशा जहां कोई विचार न हो , इतनी शांति और मौन हो वह अवस्था ही आपको ऊपरी ज्ञान से मुक्त कराएगी । वही सच्चा ज्ञान है । स्मृति से किसी समस्या के समाधान में देर लगती है ,फिर भी सही हो गारन्टी नहीं है । पर परमचेतना से तुरन्त एवं सही समाधान प्राप्त होता है । समास्या के समाधान के लिए विचारों अर्थात मन का उपयोग मत करो आत्मा या चेतना का उपयोग करो ।

बुरा काम बहुत सोच –विचार कर करो । शुभ कार्य तुरन्त करो । तुम्हें भ्राति है कि सदा जीना है , बहुत समय तुम्हारे पास है । विचारने और तय करने में वर्षो का समय ,कई जन्मों को समय व्यर्थ खर्च कर देते है ।

दूसरों पर अपना हक जताना , वह तुम्हारे हिसाब से चले यह ममता है प्रेम नहीं ।

भारतीय धर्म कहता है कि अनंत बार तुम यह गौरख धन्धा कर चुके हो । वह धन –पद प्रतिष्ठा का फैलाव ,मेरा –तेरा , झगड़े –झांसे , अदालतें –मुकदमें , सब कर चुके हो , अभी भी कर रहे हो , आगे भी करने का इरादा है , ऊबोगे नहीं जिस दिन ऊबोगे ,उस दिन तुम्हारे भीतर परमात्मा उपलब्ध हो जाएगा ।

कोई बात सुन ली , बात अच्दी लगती है तो थोड़ा इकटठा करलिया ज्ञान बढ़गया , थोड़ा अहंकार बढ़गया ,थोड़ा औरों के सामने ज्ञान बधारने की सुविधा मिल गई ।

जो तुम्हारी प्रशन्सा करता है, वह निश्चय ही बाद में निन्दा करेगा , तभी उसका मन सम अवस्था में आयेगा । झुठ पहले मीठा बाद में कड़वा होता है । सच पहले कड़वा बाद में मीठा होता है ।

जब प्रार्थना शून्य होती है ,गुनगुनाती नहीं ,गीत नहीं गाती तब ध्यान होती है और जब ध्यान गुंनगुनाता है ,गीत गाता है तब प्रार्थना होता है । प्रार्थना शतप्रतीशत तुम्हारी हो ,किसी और की प्रार्थना उधान मत लेना नहीं तो आत्मधात होगा । जब तुम संघर्ष में टूट जाते हो ,हार जाते हो ,जीत की संम्भावना नहीं हो तभी प्रार्थना का जन्म होता है –प्रभू तुम ही हो ।

सभी तर्क जालों को छोड़कर कभी फूलों से ,पेड़ों से बात करके देखो । बुद्धि तो कहेगी की क्या पागलपन है , लेकिन जो आदमी प्रकट फूलों से बात नहीं करसकता वह परमात्मा से भी बात न कर सकेगा ।

उतरो सिर से और जहां ह्रदय की धड़कन है ,वहां जाओ , वहां तुम्हारे जीवन का वास्तविक केन्द्र है । जब प्रेम हो जाता है तो ह्रदय पर एक खास जगह हाथ रखते है । यह वही जगह है जहां जीवन केन्द्र है ,प्राणों का स्पन्दन हो रहा है ।

अगर सन्यासी बनना है तो फिर नेता मत बनना दोनों रास्ते अलग–अलग है ।

एक रास्ता ध्यान का है ,एक प्रेम या भक्ति का ,इन दोनों में से एक तुम्हारी निश्चत क्षमता है । इस दूनियां में पचास प्रतिशत ध्यान से उपलब्ध होंगें । शेष प्रेम या भक्ति से दोनों प्रयोग करके देखलो ,जिसमें धुन बंध जाए ,सुर मिल जाए ,रस बहने लगे वही तुम्हारा मार्ग है ।

तुम सोचते रहोगे तो कभी निर्णय न कर पाओगे कि भक्ति करूं या ध्यान और मजा यह है कि दोनों में क्या तुम सोचते हो बहुत भेद है , यह गलत है । दोनों मार्ग है उस एक मंजिल के । वास्तविक बात है अपने मार्ग में और ईश्वर प्राप्ति में श्रद्धा और सभी श्रद्धाएं ईश्वर तक पहूंचती है । वह श्रद्धा भक्ति की हो या ध्यान की । वहां श्रद्धा पहूंचती है न भक्ति पहूचती है न ध्यान पहूंचता है । ध्यान एवं भक्ति तो केवल निमित्त है । जो चीज पहूंचती है वह श्रद्धा है ।

शरीर के लिए हल्का व्यायाम करे उसके साथ अधिक जबरदस्ती करने का परिणाम बुरा होता है । अधिकतर पहलवान अक्सर गलत वक्त पर और बुरी बिमारियों से मरते है ।

विचारों के साक्षी होजाओ न अच्छे विचार पर प्रसन्न होओ न बुरे पर दुःखी । वे आयेंगें और चले जायेंगें । उन्हें देखते रहो फिर अपने –आप शांत हो जाएंगे । कुतुहल ,आश्चर्य , एंव जिज्ञासा का भी त्याग कर दो । आत्मा दर्पण है , विचार उसके सामने से गुजरते हुए दृश्य है । वह केवल दृष्टा है । उसके कोई स्थाई प्रतिबिम्ब नहीं बनता ।

पंतजली ने छाती से श्वास लेने को कहा है । बुद्ध ने पेट से , इसलिए बुद्ध का पेट बड़ होता है ।

मनुष्य की स्वभाविक उम्र केवल सत्तर वर्ष है ।

तुम्हारे अहंकार की राख पर ही आत्मा का कमल खिलेगा ।

जिन –जिन भूलों पर तुम पछ्ताओगे उन्हें दुबारा करोगे । जितना तुम तय करोगे क्रोध नहीं करूगां ,उतना ही अधिक करोगे । क्योंकि तुम्हारे तय में अहंकार बैठा है । अहंकार ही तय करता है , अहंकार ही पश्चाताप करता है । ईसलाम कहता है कि कर्ता तो परमात्मा है । वह जो करवा रहा है ,हम कर रहें है । इसलिए ईस्लाम में पश्चाताप नहीं है ।

यह आवश्यक नहीं की ब्रह्मबोध प्राप्त व्यक्ति की संताने भी बुद्ध हो । बुद्ध का पुत्र हो या माहावीर की बेटी , चाहे श्री कृष्ण की हजारों रानियॉं ,हजारों पुत्र वे सभी ब्रह्मत्व को प्राप्त न हो सके ।

ब्रह्म को जान लो और पाप से मुक्त हो जाओ । उससे पहले पुण्य हो ही नहीं सकता पाप ही होगा , जो भी तुम करोगे गलत कारण से ही करोगे ।

व्यक्ति नाक से ही नही शरीर के रोओं से भी श्वास लेता है । यदि किसी शरीर के रोए पेंट करके या अन्य किसी विधी से बंद करदे तो मात्र तीन धण्टे में ही व्यक्ति मर जाता है –चाहे वह नाक से श्वास ले रहा हो ।

जब चित्त निर्विकार अर्थात निर्विचार होता है ,तब अनाहत नाद सुनाई देता है । वही जीवन की वीणा या संगीत है । पर वह तभी सुनाई देगा जब आप तनाव रहित , विचार रहित हो । जैसे वीणा के तार ढीले या अधिक कसे होने पर स्वर सुनाई नहीं देते । मध्य की अवस्था हो ,समता की अवस्था हो तभी वह सुनाई देगा ।

सतत स्मर्ण रखो कि तुम साक्षी हो । न तुम कर्ता हो –शरीर से कर्म होते है । न तुम विचारक हो – मन से विचार होते है । न तुम भावुक हो – ह्रदय से भावनाएं आती है । तुम तीनों के साक्षी हो । ज्ञानी न रोग को देख,ता है ,न दुःख को और न ही मृत्यू को । वह सबको आत्मस्वरूप देखता है और सबकुछ प्राप्त करलेता है । यह शरीर एक सराय है ,मन भी एक सराय है ।

बिमारी –स्वास्थ्य , भूख–तृप्ति , क्रोध –करूणा , ब्रह्मचर्य–काम , इन सभी भावों के केवल साक्षी रहो , कर्ता नहीं ये आयेंगें चले जायेंगें ।

शरीर एवं आत्मा दोनों के अलग – अलग नियम है जरूरी नहीं आत्मज्ञानी सदैव निरोगी रहे ।

यह अच्छा विचार है ,व्यक्ति है उसे गले मत लगाओ । यह बुरा विचार है ,व्यक्ति है उसे धक्के मत दो , धृणा मत करो ,सिर्फ उन्हें देखो । यह मत सौचो यह मेरा मन है इसमें केवल अच्छे विचार ही आयें। तुम चकित होजाओगे कि शरीर को देखते –देखते शरीर छूट जाता है । मन को देखते –देखते मन छूट जाता है । एक नया सूत्र जन्मता है साक्षी का ।

सफेद रंग सब रंगो का स्त्रोत है और अंत भी ।

इच्छाएं अनन्त है और जीवन छोटा होता है , अतः हर व्यक्ति अधूरा ही मरता है ।

धर्म को जानने वाला व्यक्ति जो करता है वही आनन्द से करता है । क्योंकि वह स्वयं तो करने वाला होता ही नहीं उसके भीतर से परमात्मा करता है । उसे कोई पश्चाताप भी नहीं होता । मेने यह कार्य शुभ किया उसे यह अहंकार भी नहीं होता ,यह ख्याल ही नहीं आता । पाप की चिंता नहीं होती ,भय भी नहीं रहता ,परमात्मा ही शेष रहता है । अब उसकी मर्जी ,चाहे जो करे ,मुझे क्या लेना देना है ।

मनुष्य इस जीवन में चेतना का सबसे ऊॅंचा अविष्कार है । निश्चित ही श्रेष्ठ को बचाने के लिए निकृष्ट को विदा करना होगा । हमें मच्छर ,चूहे ,हानिकारक जानवर हटाने ही होंगे । यह पाप नहीं है । हॉं अगर श्रेष्ठ को बिना हानी पहूॅंचाए निकृष्ट बच सकता है तो स्वागत है ।

बिना मांगे ही दूनिया में चीज मिलती है मांगना एक हिंसा है । जिसमें तुम आतुर करते हो दूसरे को देने के लिए । जब तुम मांगते हो तो दूसरे में संकोच पैदा होता है ।

सत्य की प्यास होना उतना ही बड़ा सौभाग्य है । सत्य की प्यास ही पैदा न हो तो बहुत बड़ा हर्ज है । जिज्ञासा और आकांक्षा के दबाव में आपके भीतर बीज टूटता है और उसमें अंकुर निकलता है । बीज ऐसे ही नहीं टूट जाते उनको बहुत दबाव चाहिए ,बहुत उत्ताप चाहिए । तब उनकी सख्त खोल टूटती है और उसके भीतर कोमल पौधे का जन्म होता है । अगर आप सच में पाना चाहते है तो कोई ताकत आपको रोकने में समर्थ नहीं है ,और अगर आप नहीं पाना चाहते तो कोई रास्ता नहीं है । आपकी प्यास आपके लिए रास्ता बनेगी । प्यासा होने के साथ हमें आशा से भरा हुआ भी होना चाहिए । भीतर की दुनिया में आशा बहुत बड़ा रास्ता है । जब आप आशा से भरते है तो आपके कण –कण में, विचारों मे,प्राण स्पंदन में आशा व्याप्त हो जाती है ।

साधना में जो धटित हुआ है उसका स्मर्ण रहे जो घटित नहीं हुआ है उसका नहीं । थोड़ा सा भी कण लगे शांति का तो उसे पकड़े , वह आपको आशा देगा और गतिमान करेगा । ध्यान में जो आपको थोड़ासा अनुभव हो उसको आधार बनाएं आगे के लिए ।

कम समय एवं श्रम में इतना सस्ता जो अगर ईश्वर मिल जाए तो फिर शायद आप उसे किसी मतलब का न समझें ।

शरीर या पैरों का हिलना अशांत होने का प्रतीक है ,ध्यान में सब शांत एवं स्थिर होने लगता है ।

जीवन में एक काम चुने जो आप का आनंद है । जो आपका व्यवसाय नहीं है , तो आपकी जो शक्तियाँ विनाशात्मक रूप में परिवर्तित होती है , वे सृजन में लगेंगी । वह शक्ति जो कोध में, काम में खर्च होती है ,वह सृजन में रूपांतरित हो जाएगी । जब भी भावावेश उठे उसे शरीर के किसी अंग में उपयोग कर लेवें । उसे व्यायाम , चित्रकारी या अन्य कार्यो में उपयोग करें । जब हर वस्तु रेड़िमेड़ हो तो व्यक्ति के अपने हाथ के सृजन का आनन्द समाप्त होगया । जो व्यक्ति जितना सृजनात्मक होगा उसका कोध एवं काम विलीन हो जाएगा ।

भोजन सुस्ती , उत्तेजना या मादकता न दे वही शुद्ध है । अति विश्राम एवं अति व्यायाम दोनों नुकसान दायक है । काल्पनिक व्यायाम भी उतना ही उपयोगी है जितना वास्तविक व्यायाम । शुद्धि तीन प्रकार की है शरीर शुद्धि , विचार शुद्धि एवं भाव शुद्धि । पुण्य को कोई लक्ष्य नहीं होता , जिसका लक्ष्य होता है वह पुण्य नहीं होता ।

विज्ञान पदार्थ की अंतस शक्ति को खोजता है , धर्म चेतना की अंतस शक्ति को खोजता है ।

जीवन में श्रेष्ठ सीढ़ीयाँ पाई जाती है , खोई नहीं जाती । यदि खोती है तो वह पाने का केवल भ्रम था पाई नहीं थी ।

भूखा व्यक्ति शरीर के अधिक सानिघ्य में होता है । पेट भरा हो तो वह कम होगा । उसके चिंतन की धारा शरीर न होगा । दरीद्र शरीर के अधिक निकट रहता है । समृद्धि में पहली बार तपश्चर्या की आवश्यकता महसूस होती है । उसे आत्मा की जरूरत का तभी अहसास होता है । आत्मा से निकटता होने पर शरीर की जरूरतें भोजन , काम , कोध , सभी समाप्त हो जाते है ।

सत्य अखण्ड़ है उसे हमेशा पूर्णरूप से ही प्राप्त किया जाएगा ,अशंतः नहीं । आप या तो छत पर होंगे या नहीं । छत पर कमशः सीढ़ियों से करीब पहुंच सकते है पर अंतिम सीढ़ी भी सीढ़ी होगी छत नहीं ।

सृजनात्मक कार्यो में लगने से अहंकार क्षीण हो जाता है । जब अहंकार का धुआं विलीन हो जाता है । तो नीचे पता चलता है कि आत्मा की लौ है ।

काम , कोध , लोभ शक्तियां है पर अहंकार नहीं । अहंकार केवल अज्ञान है । जब काम, कोध, लोभ समाप्त होते है तो किसी दूसरी चीज में रूपांतरित हो जाते है पर अहंकार नहीं । वह तो केवल सांप को रस्सी समझने जैसा है ।

श्री अरूण शर्मा (तांत्रिक) –वाराणासी –

हमारा शरीर एवं हमारा मन तो वास्तविक 'हम' का साधन मात्र है । वास्तव में शरीर एवं मन के नष्ट होने पर भी वास्तविक 'हम' का नाश नहीं होता । जिन विचारों को अंतप्रेरणा की संज्ञा दी जाती है । वे वास्तव में ब्रह्माण्ड़ की आत्मा (ईश्वर) से हमें प्राप्त होते है । हमारा मन तो रिसिवर मात्र है ।

ध्यान नहीं लगने का प्रमुख कारण मृत्यू का भय है क्योंकि ध्यान मरने की एक प्रकिया है ।

मुझे अच्छे संस्कार एवं चरित्र की विदेही आत्माओं की संख्या नगन्य मिली । संस्कार हीन एवं निकृष्ट विदेही आत्माओं का बाहुल्य देखा और 75 प्रतिशत लोगों की मानसिकता को उनसे प्रभावित देखा ।

ज्ञान का कर्म में आयतीकरण जिस आधार पर होता है वह है कर्मयोग , भक्तियोग , और ज्ञानयोग पहला योग तपश्चर्या प्रधान है । दूसरा योग भाव प्रधान है । और तीसरा योग ज्ञान प्रधान है ।

स्थूल जगत से लेकर निर्वाण जगत पर्यन्त एक ही आत्मा अपने संस्कार और अपनी उपलब्धियों के अनुसार विभिन्न नाम एवं रूपों में निवास करती है । जब वह स्थूल जगत ,भाव जगत एवं सुक्ष्म जगत में निवास करती है तो क्रमशः उसे जीवात्मा, प्रेतात्मा , एवं सुक्ष्मात्मा कहते है ।

तीन प्रकार की शक्तियाँ मनुष्य में विद्यमान होती है प्राण शक्ति , मन शक्ति , एवं आत्मशक्ति इन्हें ही तंत्र में क्रमशः महाकाली , महालक्ष्मी , और महासरस्वती कहा गया है ।

भोग की लालसा से जो लोग साधना करने जाते है उनका लोक–परलोक दोनों खराब हो जाते है ।

अघारी तांत्रिक शमशान में नंगे लेटे रहते है कभी किसी ने भोजन किया तो खा लिया अन्यथा वैसे ही रह जाते है । मुर्दे का माँस , लता पत्र तथा विष्ठा तक खाने में उन्हें एतराज नहीं होता , कोई अरूचि नहीं होती , इतने वितराग होते है ।

प्रेत मुक्ति के लिए काली घाट में ग्यारह कुमारीयों को भोजन कराकर एक –एक साड़ी दी और पाँच – पाँच रूपये दिये । काशी अथवा गया में श्राद्ध करवाने पर और ब्राह्मणों और साधू सन्यासियों को भोजन करवाने पर उन प्रेतात्माओं को शांति प्राप्त होती है एवं प्रेत योनी से मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है ।

हमारे शरीर मे भीतर जहां अंधकार है वहां आत्मशक्ति का केन्द्र है वही आत्मशक्ति का केन्द्र है । वहीं आत्मा का अस्तित्व है। मगर हमारी इंद्रियां मन की सहायता से परम सत्य उस आत्मा को बाहर प्रकाश में खोजती है और प्राप्ति का प्रयत्न करती है ।

शरीर एवं आत्मा के मध्य प्राण है । प्राण का ही दूसरा नाम श्वास है । जब तक श्वास है तब तक शरीर एवं आत्मा का संबन्ध रहाता है । प्रत्येक मनुष्य चोबीस धण्टे में 21600 बार श्वास लेता है । यदि इस संख्या में कमी –बेसी न हो तो मनुष्य की पूर्ण आयू 100 वर्ष है । इससे अधिक भी जीवीत रह सकता है । (एक घण्टे में 900 , एक मिनट में 15 एवं 30 सैकण्ड में सात बार श्वास होनी चाहिए)

अधिक तेज आवाज में बोलना, क्रोध करना , शराब पीना, सम्भोग करना , तीव्र गति से दौड़ने पर श्वास का व्यय सर्वाधिक होता है । निर्धारित मात्रा से अधिक श्वास लेने पर जीवन शक्ति की मात्रा कम हो जाती है और आयू भी कम हो जाती है । शांती के साथ धीरे –धीरे और गहरी श्वास लेने पर प्राण शक्ति के व्यय में बचत होती है । योगी लोगों की आयू अधिक होने का कारण यही है कि वे श्वास बहुत कम लेते है । निर्धारित श्वास लेने पर शरीर एवं मन दोनों स्वस्थ रहते है । कम से कम श्वास लेने पर शांति और आराम मिलता है । जितना अधिक शारिरिक श्रम होगा उतनी ही अधिक श्वास की अर्थात ऑक्सीजन की आवश्यकता होगी । जब हम निंद लेते है तो शरीर को ऑक्सीजन की आवश्यकता कम पड़ती है । इसलिए श्वास की गति मंद पड़ जाती है और शरीर के भीतर कॉर्बनडाईआक्साईड एकत्र होने लगता है । वह जितनी अधिक होगी उतनी गहरी नींद आयेगी । सूर्यास्त के पश्चात वातावरण में कार्बनडाईऑक्साइड बढ़ जाती है जिससे सभी जीव सो जाते है एवं सूर्योदय से पुनः ऑक्सीजन बढ़ जाती है और सभी जाग जाते है । कार्बनडाईऑक्साइड भी एक निर्धारित मात्राा से अधिक होने पर चिरनिद्रा अर्थात मृत्यू हो जाती है ।

विचारक अर्थात अधिक सोचने वाला अक्सर भूलक्कड़ होता है । जितना बड़ा विचारक उतना बड़ा भूलक्कड़ होगा । जम्हाई तामसी व्यक्ति को अधिक , राजसिक को कम एवं सात्विक को शून्यवत आती है ।

ध्यान की एक विशेष अवस्था है उसके बाद ध्यानी किसी बात को याद नहीं रखता और वह कुछ भूलता भी नहीं है मन की एकाग्रता स्मृति वर्धक है । ध्यानी कुछ नहीं संभालता वह खाली रहता है । सब अपने आप ही संभला रहता है । एक बहुत बड़े योगी का कहना है – भूख लगने पर खालेता हूं नींद आने पर सो लेता हूं यही मेरी साधना है

मृत्यू न कौतुक है न कष्टदायक जिसे असह कहा जा सके , सब कुछ उतनी ही सरलता से हो जाता है जैसे रात्रि में सोते समय वस्त्रों को उतारना । शरीर छोड़ने के बाद शांति ही शांति है । मृत्यू के विषय में आवश्यक जानकारी के अभाव में वह डरावनी प्रतित होती है । जैसे सोने का पता नहीं चलता वैसे ही मृत्यू का भी पता नहीं चलता । मरणसन्न अवस्था में मृत्यू के संकेत मात्र से व्यक्ति भयभीत हो जाता है और मृत्यू से संघर्ष करने लगता है । वास्तव में वही संघर्ष मृत्यू को कष्टदायक बना देता है । कभी –कभी तो लोगो को उस संधर्ष के फलस्वरूप काफी लंबे समय तक कष्ट भोगना पड़ता है । इस कष्ट से बचने का एक मात्र उपाय है धार्मिक ग्रंथों का पाठ या भगवान के नाम का जप या कीर्तन । एक मृतक को खाने को अनाज एवं सिक्के दिये गए तब उसे महसूस हुआ कि उसे पका हुआ भोजन दान करना चाहिए था ।

विचारशक्ति की गति को कोई भी पदार्थ या वस्तू रोक नहीं सकती केवल सूर्य का प्रकाश उसके कम्पनों को बिखेर दिया करता है । उसी कारण धर्मग्रंथों में उषाकाल , संध्या काल, प्रदोषकाल , और रात्री के मध्यकाल में योगाभ्यास , ध्यान एवं जप आदि करना बताया है ।

हमारा मस्तिष्क बाह्यजगत के विचारों को स्वीकार करने का आभासी है , अंतर्जगत का नहीं । मगर न समझते हुए भी हम उन बाहरी विचारों से प्रेरित हो अच्छे –बुरे कर्म एवं व्यवहार करते रहते है । ध्यान , योग की सहायता से चित्त की एकाग्रता जैसे – जैसे बढ़ती जाएगी वैसे –वैसे मस्तिष्क की ग्राह शक्ति बढ़ती जाएगी और हमारा सम्बन्ध अर्न्तजगत से स्थापित हो जाएगा ।

तीसरे नेत्र का स्थान दोनों भौहों को मध्य यानी भ्रूमध्य में है। यही आज्ञा चक्र है । वहां जौ के आकार का एक छिद्र है वही तीसरा नेत्र है जो बंद रहता है । जब योग की विशेष प्रक्रिया द्वारा वह खुलता है तो उसमें नीलम किरणें निकलने लगती है और प्रकाश को जन्म देती है । योगी गण उसी अलौकिक दिव्य ज्योति से अभौतिक सत्ता का अवलोकन सहजभाव से करते है । उस नीली ज्योति में एक ही समय में सम्पूर्ण विश्व का दर्शन होता है । सम्पूर्ण विश्व बिम्बवत भासता है ।

अनहद नाद के तीन केन्द्र है , दो केन्द्र दोनों कनपटियों में एवं तीसरा कपाल के बिल्कुल बीच में है । योगी लोग इन केन्द्रों के माध्यम से पारलोकिक आत्माओं से बातें करते है । ध्यान का आश्रय लेकर सर्वप्रथम प्राण को मन में नियोजित कर अनहद नाद के केन्द्र पर चित्त को एकाग्र किया जाता है । केन्द्र पर चित्त एकाग्र होते ही संबन्धित गतात्माओं की आवाज सुनाई देने लग जाती है । विचारो द्वारा उन तक संदेश भी पहुंचाया जा सकता है ।

इस माया अथवा बंधन से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि हम थोड़ी देर के लिए बिना मन के हो जाए । बीच मेंसे मन को हटालें और एक झलक हमें मिल जाए हमें बिना मन के जगत की , हमें लगेगा भीतर स्वच्छता है , निर्मलता है शांति है । यह अनुभव ही ब्रह्म है ।

चित्त के एकाग्र एवं विचार शुन्य होने पर हमारी आत्मा विश्व को पंचतत्वों के अनुशासन से मुक्त हो जाती है ।

जीव अपने -अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है । 84 लाख योनियों में भटकने वाली बात मात्र कल्पना नहीं है ।

गर्भस्थ शिशु शरीर का जब पूर्ण निर्माण हो जाता है तो जन्म के दो घंटे पूर्व आत्मा उसमें प्रवेश करती है और उसके प्रवेश करते ही माता को पीड़ा का अनुभव होने लगती है । आत्मा के गर्भ में प्रवेश होने का यही लक्षण है ।

मन की तीन अवस्थाएं है चेतन , अचेतन और अतिचेतन । जीवित प्राणी चेतन मन की अवस्था में कार्य करता है । मरने के पश्चात चेतन मन का स्थान अचेतन मन ले लेता है। अचेतन मन की भी दो अवस्थएं है । पहली वासनाधारी आत्मा - जिनकी इच्छाएं समाप्त नहीं हुई हैं, इन प्रेतों का जीवन अशांत एवं दुखी रहता है। इनकी शक्ति चेतन मन से हजार गुना होती है । ये आत्माएं अपनी अधुरी इच्छाओं के लिए पागलों की तरह भटकती रहती है और अपनी वासना , कामना आदि के लिए पागलों की तरह भटकती रहती है और अपनी वासना , कामना आदि अनुकूल व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर उन्हें पूरा करने का प्रयास करती है ।

दूसरी है सूक्ष्मशरीर धारी आत्मा इनकी शक्ति वासनाधारी आत्मा से हजारगुना अधिक है । इनका जीवन शांत और आनन्दमय होता है ।

मनुष्य के मस्तिष्क का 75 प्रतिशत भाग अच्छी एवं बुरी आत्माओं से प्रभावित होता है । पूजा-पाठ , व्रत -उपवास , आदि इसीलिये है कि मस्तिष्क पर अधिक से अधिक आपका अधिकार हो । प्रेत बाधित व्यक्ति के चेतन मन की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है । उस व्यक्ति के शरीर का तापमान 100 से 102 डिग्री बना रहता है । उस व्यक्ति की प्राणशक्ति बढ़जाती है उसी शक्ति के माध्यम से प्रेतात्मा अपनी इच्छा पूरा करती है। जैसे यदि उन्हें शराब पीने की ईच्छा होगी तो उस व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार शराब पीने की लत लग जाएगी । उस व्यक्ति को लत नहीं होती वास्तव में वह प्रेतात्मा से पीड़ित होता है अचानक बिना इच्छा के किसी के द्वारा अच्छा या बुरा काम होने के पीछे यही रहस्य है । यदि कोई प्रेतात्मा कामुक है तो वह इच्छित स्त्री -पुरूषों के मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर ऐसी परिस्थिति का निर्माण करेगी कि वे सहवास को प्रेरित हो और उनके माध्यम से वह तृप्त होगी ।

प्रेतात्मा द्वारा इच्छित वस्तुएं भी प्रकट कि जाती है । वह प्रेतात्मा अपने मनोबल से स्वंय उसकी सृष्टि कर देती है परन्तु उस वस्तु का अस्तित्व तभी तक रहेगा जब तक उसके मनोबल का प्रभाव है । कुछ योगात्माएं स्वंय वस्तु या पदार्थ का निर्माण भी कर देती हैं, वे वस्तुएं शीघ्र नष्ट नहीं होती ।

मरने के बाद 40 दिन का समय महत्वपूर्ण होता है । उस बीच यदि किसी मृतक की खोपड़ी मिल जाए तो उसके माध्यम से उसकी आत्मा से सम्पर्क किया जा सकता है ।

लोगों को मृत्यू के पश्चात ही मानव शरीर का महत्व समझ में आता है ।

सभी प्रेतात्माएं अपने आप में पुरानी यादों में लीन रहती है । किसी को किसी से कोई मतलब नहीं होता ।

आत्मा को अपनी ईच्छानुसार किसी के गर्भ में प्रवेश करने का अधिकार नहीं होता । कोई अदृश्य शक्ति बराबर उसे इस कार्य से रोकती है । और वही शक्ति अनुकूल गर्भ में प्रवेश के लिए उसे प्रेरित भी करती है । मतलब यह है कि आत्मा अपनी इच्छा से मनचाहे गर्भ में प्रवेश नहीं कर सकती । शरीर में आत्मा भारीपन एवं परतंत्रता का अनुभव करती है और शरीर रहित अवस्था में हल्कापन एवं स्ववंत्रता का लेकिन इस अवस्था में वह कर्म नहीं करसकती केवल भोग ही भोग होते है । जब आत्मा के निमित्त ब्राह्मभोज दिया जाता है । तो वह आत्मा तृप्ती का अनुभव करती है ।

सूक्ष्म शरीर धारी आत्माएं कहीं अन्यत्र नहीं हम सब लोगों के बीच में ही है । वे अपनी ओर से हम सब से सम्पर्क स्थापित करने और अपना संदेश देने का बराबर प्रयास करती है । अगर हम ध्यान योग द्वारा अपने मन को एकाग्र और वशीभूत कर अपने सूक्ष्म शरीर का विकास करले तो हमारी और से भी उनसे सम्पर्क सम्भव है ।

वायू ही अन्तिम तत्व है जो सब से अंत में शरीर से बाहर निकलता है । वह शरीर की नलिकाओं में विद्यमान रहता है । जबतक वह रहता है अंगों में किसी न किसी रूप में संचालन किया अवश्य होती रहती है ।

मृत्यू के पश्चात भी आत्मा के संस्कार , भाव एवं विचार परिवर्तित नहीं होते है । ऐसा नहीं है कि एक चोर मरकर ईमानदार हो जाए या एक मूर्ख मरकर विद्वान हो जाता है । मृतात्मा जब तक पूर्व जन्म की अपनी समस्याएं हल न करले वह बेचेन एवं चिंतित रहती है । उसकी पूरानी आदतें भी वैसी ही रहती है । मुसलमान पीर–पैगम्बरों को दफनाने के कारण उनकी सुक्षात्मा अनन्तकाल तक सुक्ष्म शरीर में रहती है । वे मजार या खजुर के पेड़ में विश्राम करती है । और पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण की परिधि में ही विचरण करती है । जुम्मेरात को मजार पर जलने वाले चराग की रोशनी में ही वे देख पाते है । इत्र , सफेद फूलों की माला और खोए की बरफी से वे काफी प्रसन्न होते है । उनसे सम्पर्क करने के लिए चौकी का निर्माण किया जाता है । हिन्दु मृतात्माओं की अपेक्षा मुसलमान प्रतात्मा अधिक शक्तिशाली होती है । वे इस साल उसी दिन अपने मजार पर अवश्य आती है । सात्विक विचार की मृतात्माएं सफेद, राजसी और तामसी विचार वाली मृतात्माएं क्रमशः लाल और स्याह होती है ।

जो ब्राह्मण आत्महत्या करता है उसे ब्रह्मपिशाच की एवं यदि उसने धर्म सम्प्रदाय ,संस्कृति की रक्षा के लिए युद्ध में मरा या आत्महत्या की है तो उसे ब्राह्मवीर की योनी प्राप्त होती है । यदि उसकी हत्या की हो या स्वंय अकालग्रस्त होकर मरा हो कतो वह ब्राह्मराक्षस की योनी प्राप्त होती है । ये तीनों ही अत्यन्त शक्तिशाली होते है । ब्रह्मप्रेत जिस दिन एवं जिस समय अपने शरीर का त्याग करते है । उस दिन एवं उस समय प्रत्येक वर्ष अपने मृत्युस्थल पर अवश्य आते है । यदि उनके निमित्त मंदिर , अथवा समाधि हो तो वे उसमें प्रवेशकर कुछ समय विश्राम करते है । उनकी आयु 100 से लेकर 1000 वर्ष होती है ।

स्थूल जगत का एक दिन सूक्ष्म जगत के एक मिनट के बराबर होता है । ब्रह्मप्रेत आयू पूरी होने पर पुनः मानव योनी में आते है या बेताल बन जाते है । उनके ऊपर क्रमशः यक्ष, गर्न्धव एवं किन्नर योनियाँ है ।

देवयोनी को छोड़कर अन्य आत्माएं प्रसन्न होने पर सारे सुख देती है ,वहीं अप्रसन्न होने पर अपनी जमात में मिला लेती है या सारे परिवार का नाश कर देती है । कुष्ठ रोग , या असाध्य बिमारियाँ भी इनके कुपित होने पर होती है ।

पीरों की कब्र के ऊपर जो मजार बनाई जाती है वही चोकी होती है । पीर का जिस्म जिस दिन और जिस समय कब्र में दफन किया गया है , हर साल उसीदिन और समय पर वह आत्मा मजार में आती है और वे सभी जाति एवं धर्मो के लोगों की प्रार्थना सुनते है और दुआ देते है । यदि वे किसी पर प्रसन्न होजाए तो उसे कोई दुःख एवं अभाव नहीं रहता । ऐसी कोई समस्या नहीं जो वे हल न कर सकें । बस पीर की कृपादृष्टि चाहिए ।

अच्छा एवं बुरा विचार ही स्वर्ग एवं नर्क है और कुछ नहीं ।

मनुष्य की चेतना उसके मस्तिष्क में बंद एकाकी चेतना 7नहीं है वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैली विराट चेतना का अंग है । और हर अवस्था में उससे संबन्ध बनाए रखती है । मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों में जड़–चेतन जगत में व्याप्त चेतनाओं तक एक दूसरे से जुड़ी है। और एक दूसरे पर प्रभाव ड़ालती है । और प्रभावित होती है । मनुष्य का केवल 25 प्रतिशत हिस्सा ही स्वतंत्र है शेष 75 प्रतिशत इनसे प्रभावित है ।

प्रेतलोक अंतरिक्ष में नहीं बल्कि इसी धरती पर दूध–पानी की तरह मिला हूआ है ।

अच्छी वासना के भाग को पितृलोक एवं बुरी वासना के भाग को प्रेतलोक कहते है

सुक्ष्मात्माओं में इच्छाशक्ति एवं प्राणशक्ति प्रबल होती है । लेकिन प्रेतात्माओं में केवल वासना ही प्रबल रहती है ।

मस्तिष्क के तीन भाग है वे तीनों भाग मन शक्ति, विचार शक्ति , एवं इच्छा शक्ति के केन्द्र है । प्राण शक्ति का केन्द्र नाभी है । उन शक्तियों का संबन्ध प्राण शक्ति से जहां स्थापित होता है वह है हृदय ।

मानव शरीर में मन शरीर , वासना शरीर और सुक्ष्म शरीर का भी बीज रूप में अस्तित्व है । सुक्ष्म शरीर का भौतिक शरीर की भांति इच्छानुसार उपयोग किया जा सकता है ।

उपचेतन मन की शक्ति के माध्यम से ग्रह –नक्षत्रों और लोक –लोकान्तरों में निवास करने वाले प्राणी अपने विचारों , भावनाओं ,इच्छाओं को मानव मतिस्तष्क में संप्रेषित करते है । जो बाद में मानवीय विचारों भावनाओं और इच्छाओं में परिवर्तित होकर भौतिक रूप और आकार ग्रहण करते है । उपचेतन मन जहां इन संदेशों को ग्रहण करता है वहीं स्वयं के मानवीय विचारों ,भावनाओं ,इच्छाओं को प्रसारित भी करता है । ग्रहण एवं प्रसारण की ये दोनों क्रियाएं उस समय और अधिक बढ़ जाती है जबकि शरीर में रक्त संचार अपने व्यवस्थित ढ़ग से होता है । प्राणों की गति समान रहती है और शरीर पूर्ण स्वस्थ रहता है ।

मृत्यू के बाद कुछ समय के लिए सुक्ष्म शरीर न मिलने पर सभी लोगों को प्रेतयोनी स्वीकार करनी पड़ती है । प्रेत शरीर एक प्रकार से स्थूल और सूक्ष्म शरीर के बीच नाव का काम करता है ।

जो लोग किसी रोग या व्याधि के कारण आयु रहते हुए भी मर जाते है । उन्हें शेष आयू का चौगुना भाग प्रेत लोक में रहना होता है । आयू रहते आत्महत्या करने पर शेष आयू का आठ गुना रहना होता है । किसी कारण हत्या या दुर्घटना में मरने पर शेष आयु का सौलह गुना रहना होता है ।

पहले प्रकार के लोग जो नए शरीर की प्राप्ति की प्रतिक्षा में प्रेत लोक में है उन्हें अधिक कष्टों का सामना नहीं करना पड़ता वे जैसे स्थूल शरीर में रहते थे वैसे ही अपनी वासना के

अनुसार वातावरण तैयार कर प्रेतलोक में रहते है । ये प्रेतात्माएं अपने गुण , कला एवं सिद्धान्तों से सम्बन्धित व्यक्तियों को उपचेतन एवं चेतन मन द्वारा बराबर सहायता करती है और उनको उन्नती की दिशा में बराबर प्रेरण देती है । इससे उन्हें संतोष एवं शांति मिलती है । प्रेतात्मा मनुष्य के शरीर को माध्यम बना कर भाग भोगती है एवं तृप्ति का अनुभव करती है । जैसे शराब की इच्छा होने पर वे शराबी व्यक्ति को प्रेरित करेगी और उसके माध्यम से मदिरा के तत्वों और गुणों को ग्रहण कर तृप्ति का अनुभव करेगी । और शराबी को पता भी नहीं चलेगा । उसे शराब का नशा न होगा इसके लिए वह आश्चर्य भले ही कर सकता है । इसी प्रकार वह अध्ययन करेगी पर वह व्यक्ति बाद में पढ़ा हुआ भूल जाएगा । जब कोई व्यक्ति किसी विषय मे गहराई से विचार करता है अथवा कोई गम्भीर चिंतन –मनन करता है तो उसकी भावनाओं के अनुरूप अनेकों प्रेतात्माएं उसके चारों और चक्कर लगाने लगती है , मरणासन्न व्यक्ति के चारो तरफ भी चक्कर लगाती है तथा मोका पड़ने पर शव में भी प्रवेश कर जाती है । इसीलिए मृतक के शव के समीप दिया जलाते है और शव को अकेला भी नहीं छोड़ते है । पति–पत्नि सम्भोग के समय भी उनलके शरीर में प्रवेश कर रति आनन्द लेती है । कभी उनके गर्भ में भी चली जाती है । मगर माता–पिता के संस्कार एवं कर्म से तारतम्य न होने के कारण गर्भस्थ शिशु के शरीर के साथ बाहर निकल आती है इसे ही गर्भपात कहते है । गर्भपात का प्रायः यही कारण होता है ।

वास्तव में प्रेत का जीवन बहुंत कष्टमय होता है । पार्थिव शरीर के अभाव में वासना वेग के कारण असीम यातना सहनी पड़ती है । यही नर्क है । न+अर्क अर्थात जहां सूर्य न हो प्रेत लोक में 350 दिन अंधकार रहता है केवल 15 दिन सूर्य का प्रकाश रहता है । उसं पितृपक्ष कहते है । जो प्रेतात्माओं का संबध है ।

देवताओं में भाव प्रधान है । पितरों में मंत्र प्रधान है । मनुष्यों में कर्म प्रधान है । प्रेतों में वासना प्रधान है । प्रतात्माओं के नाम पर दी गई वस्तुएं भले ही न मिलती हो पर अपने नाम से देने मात्र से वे संतुष्ट हो जाते है । यही उनकी तृप्ती है ।

प्रेतात्मा का जीवात्मा में प्रवेश का मार्ग ब्रह्मरन्ध्र जो कपाल पर है और दूसरा नाभि है । अच्छे संस्कार वाली प्रेतात्मा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर रहती है मगर बुरे संस्कार वाली गुरुत्वाकर्षण के भीतर चक्कर लगाती है ।

रूप सौंदर्य को महत्व देने वाली प्रेतात्मा जिस स्त्री या पुरूष में अपने अनुरूप रूप ,सौंदर्य और विलासिता देखती है उस स्त्री या पुरूष के शरीर में प्रवेश कर अनका उपयोग करने लग जाती है । जिस स्त्री या पुरूष से अत्यधिक प्रेम होता है ,प्रेतात्माएं उसकी और बराबर आकर्षित होती रहती है और अदृश्य रूप से उसकी सहायता भी कर देती है । शत्रु से बदला भी ले लेती है ।

प्रेतात्माएं सबसे पहले उपचेतन मन पर आक्रमण करती है ,इस अवस्था में व्यक्ति की आत्मा पर तो प्रभाव नहीं पड़ता लेकिन मन की स्थिती बड़ी विचित्र हो जाती है । व्यक्ति हमेशा अपने आप में खोया हुआ और डूबा हुआ सा रहता है । वह क्या बोल रहा है क्या सोचविचार कर रहा है और क्या कर रहा है ? इन सब का उसे जरा भी ख्याल नहीं रहता । उसी अर्धचेतन की सी स्थिति रहती है मति , गति भी अर्धविक्षिप्तों की सी रहती है । उसे नींद बहुत कम आती है । निदं आ भी गई तो भयंकर स्वप्न देखता है । मोटा–ताजा काले रंग का आदमी , आग ,पानी , खून, कीचड़ आदि का अधिक सपना आता है । बार –बार रोमाचं का होना , अंधेरे से डर लगना , एकांत में अधिक रहना , शरीर से दुर्गन्ध निकलना , उंगलियों के नखों का पीला होना , आत्महत्या का प्रयास करना इसी अवस्था के अंतर्गत है । प्रेतात्माएं जब उपचेतन मन के साथ चेतन मन को प्रभावित करती है तो उसकी मानसिक यंत्रणाओं के साथ –साथ शारिरिक यंत्रणाएं भी बढ़ जाती है इसी प्रकार जब वह चेतन मन की सीमा लाघं कर आत्मा पर आक्रमण करती है तो चेतन मन अचेतन अवस्था में बदल जाता है इसे जड़ावस्था या मूढ़ावस्था कहते है । उस समय उपचेतन मन अधिक सक्रिय एवं शक्तिशाली हो जाता है मगर दसरी और आत्मा प्रेतात्मा से प्रभावित होकरि क्षीण होने लगती है इस अवस्था में व्यक्ति को जरा भी ज्ञान नहीं रहता परन्तु उपचेतन मन के सक्रिय होने को कारण उसके मुहं से चमत्कार पुर्ण भूत ,भविष्य एवं वर्तमान काल की बातें निकलने लगती है । क्योंकि उसके लिए अंर्तप्रज्ञा अथवा विराट चेतना का द्वार खुल जाता है । इसमें मृत्यू की संभावना रहती है । आत्मा की शक्ति क्षीण होने पर प्रेतात्माएं उसे अपने समाज में मिला लेती है । इस प्रकार के व्यक्ति की आत्मा से संघर्ष करने वाली प्रेतात्माएं अपनी वासना पूरी करने के लिए चमत्कार पूर्ण बाते करती है और लोगों को प्रभावित करने के लिए काली, शीतलामाता , हनुमान या भैरव आदि बताती है । इसे सत्य मानकर लोग चढ़ावा भी करते है और मनौतियां भी मानते है ।

देश में इस भ्रम के वशीभूत लाखों लोग है । मनुष्य के शरीर में किसी भी देवी–देवता का प्रवेश असंभव है । यदि प्रवेश संभव है तो प्रेतात्मा का भले वह अपने आप को देवी कहे या देवता । इस प्रकार की प्रेतात्माओं से लोगों का कभी –'कभी कल्याण भी हो जाता है ।

ध्यान करते –करते एक अवस्था वह आती है । जब मनुष्य स्वयं को शरीर से अलग महसूस करने लगता है । कभी –कभी वह शरीर से दूर यात्राएं भी करलेता है । मेरा शरीर बिस्तर पर पदमासन में रहता था । और मैं दूर यात्रा पर निकलजाता था । मैंने देखा गंगातट पर स्नान करते हुए ,मंदिरों में पूजा –पाठ करते हुए , ध्यान, धारणा करते हुए , शरीरधारियों से कहीं अधिक अशरीरी आत्माओं को देखा । इसी प्रकार निम्नकोटी की आत्माएं विशेषकर झूण्डों में मैंने शमशान मदिरालय ,और मॉस की दूकानों के अतिरिक्त जहां लड़ाई –झगड़े होते है , असामाजिक कार्य होते है । वहां दिखाई दी ।

आत्मा ही सब कुछ है । आत्मा ही एक एसी वस्तु है जो निरंतर ज्ञान की और बढ़ती रहती है । यदि हम उसके मूक निर्देश या संकेत को समझें तो जीवन अपने आप सही दिशा में बढ़ता जाएगा ।

जब हम मृत्यू के भय से रहित हो जाएंगें उसी समय अमृत्व को उपलब्ध हो जाएंगें ।

जिसकी सूक्ष्म प्राणशक्ति अत्यंत प्रखर होती है । उसका सुक्ष्म शरीर भी अत्यधिक शक्तिशाली एवं तेजोमय होता है । भौतिक शरीर की उन्नति के लिए आसन, मनोमय शरीर के लिए ध्यान, सूक्ष्मशरीर के लिए प्राणायाम है । योगीगण प्राणायाम की विभिन्न क्रियाओं द्वारा अपने सुक्ष्म शरीर को बराबर उन्नत करते रहते है । उनके चेहरे के चारों तरफ फैला प्रभामण्डल उसी सुक्ष्म शरीर का प्रतिनिधित्व करता है । जिससे वे इच्छानुसार स्थूल शरीर से अलग होकर स्वतंत्र विचरण कर सकते है । कुछ वैज्ञानिकों को कहना है कि दीर्घकाल के उपवास करने के बाद शरीर में सल्फाईड़ों का प्राचूर्य हो जाता है । जो प्रभामण्ड़लों का कारण बनता है । योगी एवं साधकों के तेजस्वी होने का यही कारण है ।

व्रत–उपवास,प्राणायाम,ध्यान और समाधी से मन और शरीर को शिथिल कर उसका विद्युतिय उत्पादन बढ़ाया जा सकता है इससे अलौकिक प्रभामण्डल ,एवं मानसिक शक्तियों का विकास होता है ।

परमात्मा का लघु अंश है आत्मा ,उसके भीतर एक चेतन तत्व है उसे मन कहते है जब वह मन जड़तत्व के संपर्क में आता है । तो उसमें विकार उत्पन्न होजाता है । तब उसे हम जिवात्मा कहते है । विश्व ब्रह्माण्ड में एक और तत्व क्रियाशील है जिससे गति उत्पन्न होती है वह है प्राण तत्व । जिवात्मा भौतिक जगत में प्रवेश करने से पहले प्राण तत्व का आवरण धारण करती है । इसी आवरण को सूक्ष्म शरीर कहते है । प्रेतात्मा इसी सुक्ष्म शरीर को प्राप्त कर पुनःजगत में आने के लिए स्थूल शरीर की प्रतिक्षा करती है ।

सिर पर शिखा रखने का जो स्थान है वहाँ सूई की नोक के बराबर छेद है उसी को

ब्रह्मरन्ध्र कहते है ।

मनुष्य का तीन चौथाई भाग जाग्रत मन से प्रभावित रहता है और चौथा भाग उपचेतना के पराधीन रहता है । मृत्यु के अनन्तर जागृत मन का अस्तित्व तो समाप्त हो जाता है लेकिन उसका मौलिक तत्व जिसमें वासना संस्कार और तमाम भौतिक वृत्तियाँ रहती है । उस उपचेतन मन में चला जाता है । यही कारण है कि मरने के बाद उपचेतन मन की शक्ति बहुंत बढ़ जाती है । इतना ही नहीं विराट मन और पराचेतना से भी उसका सम्पर्क और अधिक हो जाता है । उपचेतन मन का केंद्र मस्तिष्क है । मस्तिष्क के जिस भाग में वह केंद्र है उसको मेडूला अम्लोंगटा कहते है । इसका आकार मुर्गी के अण्ड़े के समान है और उसके भीतर एक अज्ञात तरल पदार्थ भरा हुआ है । जिसका रहस्य आजतक वैज्ञानिक नहीं समझपाए है । इस तरल पदार्थ में ज्ञान तंतुओं का समूह तैरता रहता है ।ये आपस में गुथे हुए रहते है । सुक्षत्माएं भी अच्छी एवं बुरी स्वभाव की होती है । कई उनमें बहुत भयानक होती है । ऐसी आत्माओं को केवल मंत्र शक्ति ही बांध सकती है । वह शक्ति जिसके हाथ में होती है वह उनके द्वारा कुछ भी कराने मे समर्थ होता है ।

आत्मा के बार –बार जन्म लेने और मरने का कारण केवल सूक्ष्म शरीर ही है । सुक्ष्म शरीर के नष्ट होने का अर्थ है आत्मा की मुक्ति ।

वासना का प्रभाव जितना तिव्र होगा उसी के अनुसार वासना शरीर में भी परिवर्तन होगा । उस परिवर्तन के फलस्वरुप वासना शरीर की उम्र धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है ।

प्राणों को ही वैज्ञानिको ने प्लाजमा का नाम दिया है । जिस व्यक्ति के शरीर में प्लाजमा की मात्रा अधिक होती है उसके प्रति प्रेतात्माएं स्वतः ही आकर्षित होती है । और उसकी सहायता भी करती है ।प्लाजमा के बढ़जाने पर शरीर का तापमान 101 ड़िग्री हमेशा बना रहता है । व्यक्ति अपने भीतर एक विचित्र प्रकार की ऊर्जा का अनुभव करता है ।

अन्न तत्व से स्थूल शरीर का , वासना से वासना शरीर का एवं प्राण से सुक्ष्म शरीर का निर्माण होता है । इसीलिए सुक्ष्म शरीर को प्राणमय शरीर भी कहते है । सुक्ष्म शरीर में विचार की प्रधानता रहती है । विचार की अपनी स्वशक्ति है जिससे सुक्ष्मात्मा में अंर्तचेतना अत्यधिक प्रबल होती है । इसी शक्ति से वह कभी–कभी अपने लिए पार्थिव शरीर की रचना भी कर लेती है पर स्थाई नहीं होता अंर्तचेतना की शक्ति जब तक रहती है तब तक ही वह ठहरता है फिर लुप्त होजाता है ।

शरीर की गर्मी विद्युत शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती है यही शक्ति अंतिम लक्ष्य पर परमाणुओं के सतत प्रवाह के रूप में प्रक्षेपित की जाती है ।

प्रेतात्मा से संपर्क करने का प्लानचेट केवल एक साधन है , उपकरण है , माध्यम तो वह व्यक्ति होता है । यदि प्रयास करे तो स्वयं सीधे ही वह माध्यम बन सकता है । एकांत में , मंद प्रकाश में , एक कागज पर पेंसिल रखकर उसे हाथ से पकड़कर बैठ जाएं और अपने आप को बिल्कुल शिथिल एवं खाली छोड़दो । किसी आत्मा का आवाहन करनार चाहें तो करे न करना चाहे तो न करें । आपकी पेंसिल अपने आप गतिशील हो जाएगी बर्शते आप अच्छे माध्यम हो इस विधि से आप अपनी परीक्षा भी ले सकते है । सभी लोग माध्यम नहीं बन सकते है । इसके लिए निस्तब्ध वातावरण एवं मंदिम प्रकाश भी आवश्यक है । एसा लगता है तेज प्रकाश उनके एच्छिक शरीर की संरचना को सह नहीं है ।

हम आत्माओं से प्रशन पूछते समय यह न सोंचे कि मर जाने के बाद वे कोई परिवर्तित या महापुरूष हो गए है या सर्वज्ञ हो गए है । भूत,वर्तमान या भविष्य सब जानने लगे है । वास्तव में मृतक उस लोक में वैसा ही होता है जैसा जीवन काल में था । कई बार शेखी मारने के लिए वे मनगढ़त एवं झूठी बातें भी बता देते है । वास्तव में वे आत्माएं ही संपर्क साधना चाहती है जो अपनी कोई परेशानी आपको बताना चाहती है ।

शरीर के साथ –साथ आत्मा का भी विकास हो रहा है । विभिन्न योनियों एवं रूपों में लाखों और हजारों वर्षो तक बार–बार जन्म ले चुकने के बाद जब हम मानव योनी में जन्म ले चुकें है तो अब हमारे कर्म कैसे भी हों हम निम्न योनी में वापस नहीं जा सकते । जो आत्माएं आस–पास रहती है या मानवीय वातावरण में रहती है । वे आत्माएं चित्त की एकाग्रता से प्रभावित होती है । जो आत्माएं मानवीय वातावरण से अलग अंतरिक्ष में रहती है । वे मन की

एकाग्रता से प्रभावित होती है । चित्त जब एकाग्र होता है तो उसमें से खास तरंगे विकीर्ण होती है । योग एवं तंत्र की साधना की सफलता का मूल में तरंगें ही है ।

योग शास्त्र के अनुसार सुषुम्ना नाड़ी में जन्म–जन्मातंरों का पूरा इतिहास भरा रहता है । विभिन्न प्रकार के स्वप्न देखते समय भी मन विगत जन्मों की घटनाओं में चला जाता है ।

निद्रावृत्ति निरोध से भी परकाया प्रवेश संभव है । चंद्र नाड़ी मनोमय शरीर की प्राणतत्व वाहिनी नाड़ी है । इसके निराध से निद्रावृत्ति का निरोध भी हो जाता है । तब मनोमय(सुक्ष्म) शरीर भोतिक शरीर से बाहर जाकर पर देह में प्रवेश कर सकता है । कुछ मंत्रों के सहस्त्रबार पाठ करने से भी यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।

जितने भी श्राद्ध है उनमें दशगात्र श्राद्ध प्रमुख है इससे प्रतात्मा मुक्त हो जाती है । उसे सुक्ष्म शरीर प्राप्त होता है । ज्येष्ठ पुत्र द्वारा यह श्राद्ध होने पर यह प्रसन्न होती है । अन्यथा वह कोधित हो अपने परिवार के लोगों को शारिरिक और मानसिक यंत्रणाएं देकर बदला लेती है । दशगात्र श्राद्ध के बाद प्रेत योनी से मुक्त होने का एक ही मार्ग है वह है मृतात्मा से संबध रखने वाले अन्य श्राद्धादि कियाएं कराना । उनसे शनै –शनै वासना का वेग क्षीण होकर उसे सुक्ष्म शरीर प्राप्त होता है । मृतात्मा का दस दिन तक अपने परिवार से निरंतर सबन्ध बना रहता है । वह सभी कर्मकाण्डों की साक्षी होती है । उनमें त्रुटि होने पर उसे दुःख होता है । उसे पारिवारिक सदस्यों के विचार एवं भावों का भी पता रहता है ।

.जो लोग धर्मयुद्व में मरते है,उन्हें श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति होती है । वहां शांति और आनन्द का साम्राज्य है । ?

हमारे ह्रदय , गुर्दे और मष्तिष्क में प्राण बसते है । इनका क्षय ही मृत्यू है ।अन्नमय कोष एवं प्राणमय कोष एक दूसरे पर आश्रित है । दोनों की सकियता का नाम ही जीवन है । अनुभूति में आत्मा होती है , भाव आत्मा में उत्पन्न होता है । विचार ,अभिलाषा ,इच्छा मन में होती है । भाव के गर्भ से ही विचार जन्म लेता है । ईष्ट रक्षा करता है और गुरू मार्ग दर्शन इसलिए भाव ही प्रधान है ।

प्रेतात्माएं लौंग , ईलायची, मिठाई , फूल , इत्र आदि से आकर्षित होती है ।

मन को शांत एवं मुदित करने के लिए दो बातें है – पहली है प्रसन्न और आनंदित व्यक्ति के प्रति मैत्री ,दुखी व्यक्ति के लिए करूणा , पुण्यवान के प्रति मुदिता या प्रसन्नता और पापी के प्रति उपेक्षा इन भावनाओं का विकास होने पर मन शांत हो जाता है । दूसरी है बारी–बारी श्वास बाहर छोड़ने और रोकने से भी मन शांत हो जाता है । मन शांत होते ही ध्यान की उपलब्धि होती है ।

ध्यान आंतरिक प्रकाश पर होना चाहिए ,आंतरिक प्रकाश ही आत्मप्रकाश है । इसके अतिरिक्त जो योगी वितराग को उपलब्ध हो चुके है उनका भी ध्यान किया जा सकता है । योगी मोह –माया आकर्षण और राग –अनुराग से मुक्त रहता है ।

सभी लोक लोकान्तरों का अपना–अपना उपनिवेश धारती पर विद्यमान है । सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि भारतवर्ष में ही वे सभी अवस्थित है ।

मोक्ष परम पुरुषार्थ है । इस पुरुषार्थ की उपलब्धि मूर्ति –पूजा से संभव नहीं क्योंकि वहां द्वेतभाव रहता है । मैं और ईश्वर अलग–अलग है । परमात्मा पूर्ण रूप से तटस्थ रहते हुए भी प्रेममय,दयामय,और करूणामय है । तुम जो होना चाहते हो उसके लिए परमात्मा ने पूरी स्वतंत्रा दे रखी है ।

पापियों से भी बड़ा अहंकार पुण्य करने का होता है । प्रत्येक देवता के तीन रूप होते है । विग्रह रूप , यंत्र रूप और मंत्र रूप । मंत्र के प्रारंभ में बीजाक्षर को संयुक्त कर मंत्र करने से तत्काल लाभ होता है । मंत्र सिद्धि के लिए एकांत ,मन की एकाग्रता ,विचारों की स्थिरता और प्राणों का सयंम अति आवश्यक है ।

मन के साथ प्राण का घनिष्ठ संबंध है । मन के चंचल होने पर प्राण भी चंचल होता है । विचार में आधा मन एवं आधा प्राण है । मन की सहायता से वह स्थिर और एकाग्र होता है और प्राणों के संयोग से होता है गतिमान । मन प्राण और विचार तब तक अपने–अपने स्थान पर अनुपयोगी है जब तक उनका योग शक्ति से नहीं होता । शक्ति युक्त होने पर मन ,प्राण, और विचार अपनी –अपनी सीमाओं को तोड़कर असाधारण हो उठ्ते है । तब इन्हें कमशः मन शक्ति ,प्राण शक्ति और विचार शक्ति कहते है । जिस शक्ति से इनमें शक्ति आती है उसे आत्मशक्ति कहते है । जैसे – मन , प्राण , एवं विचार एकाग्र, स्थिर और संयमित होते जाते है वैसे –वैसे उनमें आत्मशक्ति उपलब्ध होती जाती है । मन केवल मनुष्य के पास है अन्य प्राणियों के पास नहीं ।

अच्छे विचार एवं कर्म वाले व्यक्ति की विदेही आत्माएं बिना साधन –उपासना के भी अपना सहयोग देती है ।

समाधि की अवस्था में सुक्ष्म शरीर नियंत्रण आवश्यक है । अन्यथा मृत्यू हो सकती है । अर्थात शरीर से संबंध हट जाता है ।

दीपावली की संध्या पर गृहस्थ मकान के मुख्य दरवाजे पर उत्तर और दक्षिण दिशा में दीपक जलते हुए देखकर यक्ष प्रसन्न होकर धन एवं स्वास्थ्य का आर्शीवाद देते है । दीपावली पर यदि कोई व्यक्ति मिठाई मांगे तो उसे अवश्य देनी चाहिए हो सकता है वह यक्ष हो इससे वे आर्शिवाद देते है ।

मानव शरीर में कालशून्य स्थान मुख्य मस्तिष्क एवं अधो मस्तिष्क के संधिस्थल पर है योगी गण ऊर्धगत प्राणवायू के माध्यम से अपनी आत्मा को उस स्थान पर ले जाते है ,जहां उनकी अस्मितता का अभाव हो जाता है । इससे योगी ब्रह्माण्ड में स्थित उस काल शून्य स्थान में प्रवेश करते है और उस प्रगाढ़ अंधकार में उनकी अस्मितता विलीन हो जाती है ।

विचार राज्य में प्राणशक्ति के रूप में पराशक्ति कार्य करती है और भाव राज्य में मन शक्ति के रूप में परमाशक्ति कार्य करती है भाव राज्य में काल की गति अति मंद होती है ।

मन की तीन अवस्थाएं है चेतन , अवचेतन एवं अमन की अवस्था । चेतन मन का संबंध भौतिक जगत एवं विचार जगत या जागृत अवस्था से है । अवचेतन का संबंध सुषुप्तावस्था या अभौतिक जगत या भाव जगत से है । अमन का सम्बन्ध दोनों से परे समाधि अवस्था से है । मन अपनी तीनों अवस्थाओं में चैतन्य एवं क्रियाशील रहता है । और किसी न किसी प्रकार की सृष्टि करता रहता है । जैसे भाव आया मकान बनाना है । फिर विचार चालू होगें कैसे व्यवस्था करनी है ।

भाव सिद्ध होने पर भाव आते ही उसके अनुकूल वातावरण या वस्तूएं प्रकट हो जाती है । जब तक भाव रहेगा उनका अस्तित्व रहेगा । भाव राज्य में प्रवेश के लिए व्यक्ति का दृढ़प्रतिज्ञ , दृढ़ संकल्पवान,एवं एकाग्रचित होना आवश्यक है ।

स्वप्नावस्था में मनुष्यात्मा स्थूल शरीर से अपने को अलग कर सुक्ष्म शरीर के माध्यम से स्वप्न जगत या सुक्ष्म जगत में विचरण करने लगती है । उस अवस्था में सूक्ष्म शरीर भी स्थूल शरीर से अलग हो जाता है । स्वप्नकाल तक स्वप्न समाप्त होने पर मनुष्यात्मा मनोमय शरीर द्वारा तीसरी अवस्था सुसुप्ती में प्रवेश करती है । और मनोमय जगत में विचरण करती है । इस अवस्था में उसे न अपने दोनों शरीरों का ज्ञान रहता है । और न अपनी अवस्थाओं का । जब वह जाग्रत अवस्था को उपलब्ध होती है । उस समय उसे सभी अवस्थाओं के अनुभवों की स्मृति भी होती है । मन के माध्यम से आत्मा की तीनों अवस्थाओं में यात्रा हो पाती है । जब तक मन है तभी तक जीवन है । मन से कर्म है और कर्म से ही आत्मा का आवागमन होता है । परंतु यात्रा कोई भी हो एक न एक दिन अंत अवश्य होता है । चाहे कितनी भी लंबी प्रतिक्षा क्यों न करनी पड़े ।कभी न कभी मन अलग होकर आवागमन से व्यक्ति मुक्त हो जाता है । समाधी में आत्मा को स्वंय के अतिरिक्त अन्य किसी का बोध नहीं रहता ।

ज्ञान के अनुसार कर्म करना अपने आप में महत्व रखता है । अक्सर दोनों में अंतर होता है । वही अंतर आध्यात्मिक मार्ग में बाधक है । इसके मूल में प्रज्ञा है । प्रज्ञा का सीधा संबधं आत्मा से होता है । आत्मा ज्ञान –विज्ञान का भंड़ार है । प्रज्ञा द्वारा ही वह बाहर निकलता है । प्रज्ञावान को ही ज्ञान उपलब्ध होता है । प्रज्ञा ही ज्ञान को कर्म में एवं कर्म को ज्ञान में नियोजित करती है । प्रज्ञा का बोध हमें तभी हो सकता है जब हम अपने आप को ,अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को चारों और से सिकोड़ कर स्वयं अपने आप से पूछे कि हम कौन है ?इस प्रश्न को दोहराने से हमें अपने आप में प्रज्ञा का बोध जाग्रत हो जाएगा । और ज्ञान और कर्म में अंतर समाप्त हो जाएगा ।

तन एवं मन के संधर्ष में तन को जीतने दें तन पर मन हावी न होने दें । तन बहुत अनुभवी है उसकी प्रज्ञा लाखों वर्ष पुरानी है । क्योंकि वह शतप्रतिशत प्राकृतिक तत्वों से बना है । अपनी भाषा में शरीर जिस आवश्यकता को प्रकट करता है । उसकी पूर्ति करना साधक का पहला कर्तव्य है तभी शरीर साधना मार्ग में साधक की सहायता करेगा । शरीर को प्रकृति ने बनाया है , मन को संस्कृति ने विश्व को चलाने वाले नियम की धाराएं शरीर को संपदित होती रहती है । मन के दूराग्रह ही शरीर को रूग्ण
बनाते है । भगवान शिव की पूजा में पूर्ण वृत्त बनाने की बजाए अर्ध वृत्त बनाते है । आधा स्थान ब्रह्माण्ड का परम शून्य स्थान है ।

यदि किसी कार्य की दृढ़ इच्छाशक्ति होती है । वह कार्य या तो इस जन्म में होजाएगा या अगले जन्म में अवश्य होगा । पूर्व जन्म में कीगई सेवा या सदव्यवहार के फलस्वरूप उससे भी श्रेष्ठ तथा दीर्घकालीन परोपकार का अधिकार अगले जन्म में प्राप्त होगा ।

काम–वासना, उत्तेजना , क्रोध के समय ऊर्जा तरंगों का विर्सजन शरीर से बाहर होता है । और वातावरण में घुलकर ऐसा वातावरण तैयार होजाता है कि जो उसमें प्रवेश करेगा, उसी व्यक्ति पर प्रभाव पड़जाएगा ।

ध्यान , समाधी अथवा चित्त की एकाग्रता के समय अथवा बौद्धिक चिंतन ,मनन , अध्ययन, लेखन आदि की अवस्था में ऊर्जा तरंगों का प्रवाह शरीर के भीतर होता है । और षटचक्र प्रभावित होते है । अध्ययन लेखन का सम्बन्ध चित्त की एकाग्रता से होता है । अतः एकाग्रता की अवस्था में वे ऊर्जा तरंगें मस्तिष्क को प्रभावित करने लग जाती है । इससे कई बार चिड़चिड़ापन एवं विक्षिप्तता बढ़जाती है । इसके लिए प्राकृतिक वातावरण में अधिक रहना चाहिए ,घूमना चाहिए ,संगीत, कला ,नृत्य में भी रूची रखना चाहिए । एकांत में रहना चाहिए , अपने विषय से विपरीत पुस्तकें भी पढ़नी चाहिए । हम जाग्रत , स्वप्न , सुसुप्ती ,की अवस्था में रहें या गहरी मूर्छा अथवा कोमा में रहें हमारा मस्तिष्क प्रत्येक अवस्था में क्रियाशील रहता है । योग के माध्यम से व्यक्ति का मन ,विचार एवं स्वभाव बदला जा सकता है । बाघ –बकरी मे मैत्री कराई जा सकती है । चोर साधू बन सकता है । लेकिन किसी का संस्कार या प्रारब्ध नहीं बदला जा सकता है ।

योग मार्ग का पथिक अतीन्द्रिय एवं अलौकिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए आज्ञाचक्र(भ्रूमध्य) पर मन को स्थिर करते है, ध्यान लगाते है । मस्तिष्क धूप ,ताप , शीत ,प्रकाश , चान्दनी से अत्यधिक प्रभावित होता है । इसीलिए योगी गण उसे ढककर(वस्त्र से) रखते है ।ताकि आज्ञाचक्र वातावरण से प्रभावित न रहे । और उसके ध्यान में बाधा न हो ।

पूर्णिमा की रात्री में चॉंद को स्थिर दृष्टि से अपलक देखना अच्छा रहता है । उससे अपने आप में अलौकिक अनुभव होता है ।

योगीगण हृदय केन्द्र पर ध्यानस्थ होकर वहां उत्पन्न होने वाले स्पन्दनों की सहायता से ब्रह्माण्डीय स्पंदनों से सम्बंध स्थापित करते है स्थूल शरीर के मृत होने पर सूक्ष्म शरीर का स्पंदन दूगना हो जाता है । आत्मा के स्पदंन द्वारा ही तीनों शरीर जुड़े है और चेतना परमचेतना से जुड़ी है । किसी भी व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व अपने अहं का बोध स्पंदन द्वारा ही होता है ।

सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड एक विशाल और अंतहीन स्मृति पट्ल है । उसपर हजारों लाखों वर्ष की घटनाएं अंकित है और भविष्य की भी हजारों साल की घटनाएं अंकित है । वे पृथ्वी ही नहीं अन्य लोकों की भी होती है ।

आदमी अपने- आप में अकेला है और जो उस अकेलेपन में जीना जान जाता है । उसे मिलती है असली शांति ।

स्थूल शरीर से सभी प्रकार के जप,तप,पूजा, प्रणायाम, ध्यान ,धारणा में चित्त की एकाग्रता का अभाव है तो वह निष्फल एवं व्यर्थ है । क्योंकि उसके संस्कारों से सुक्ष्म शरीर वंचित रह जाता है । स्थूल शरीर एवं सुक्ष्म शरीर के मध्य मन का अस्तित्व है । आध्यात्मिक साधना भूमि में मन जितना स्थिर एवं चित्त जितना एकाग्र होगा । उतना ही सूक्ष्म शरीर उनके मूलभूत परिणामों को संस्कार के रूप में स्वीकार करेगा । जो मृत्यू के बाद भी सूक्ष्म शरीर में विद्यमान रहेंगे । अपने चेतन रूप में मन स्थूल शरीर में और अपने अवचेतन रूप में मन सूक्ष्म शरीर में क्रियाशील रहता है ।

मृत्यू के पश्चात सुक्ष्म शरीर से भी संचित आध्यात्मिक संस्कार द्वारा साधना मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है । और दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती है । सुक्ष्म शरीर प्रकृति के नियमों -बंधनों से मुक्त रहता है । इसलिए योगी आसानी से सिद्धियां प्राप्त करलेते है । वे आत्मबल से अपने लिए कुटिया और उसके चारों और तपोवन आदि बना लेते है ।

जितनी भी प्रकार की शारिरिक एवं मानसिक यातनाएं है उनमें सबसे प्रबल गर्भ यातना एवं मृत्यू यातना है । उसका मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति की पूर्व की सारी स्मृतयां समाप्त हो जाती है ।

मन आत्मचेतना की क्रियाशील अवस्था है । इसके तीन रूप है , ठोस , द्रव और ऊर्जा ठोस रुप में मन स्थूल शरीर में , द्रव रुप में सूक्ष्म शरीर मे और ऊर्जा रुप में कारण शरीर में विद्यमान रहता है । जीवन काल में यह तीनों अवस्था में रहता है । ठोस रूप में जागृत अवस्था में , द्रव रुप में स्वप्नावस्था में और प्रगाढ़ निद्रा में ऊर्जा अवस्था में रहता है । इसीलिए स्वप्नावस्था में प्रत्येक दृश्य एवं वस्तु अस्थिर एवं अस्थाई होती है ।

मन के तीनों रूपों का स्पन्दन से गहरा संबन्ध है । कारण शरीर में मन का ऊर्जा रूप है। इसीलिए उसकी गति शक्ति प्रबल होती है । सुक्ष्म शरीर की गति विद्युत की है । कारण की गति उससे तेज ध्वनी की है । कारण शरीर का स्पंदन सुक्ष्म शरीर से सौ गुना आधिक होता है । प्रत्येक प्राणी में विद्युत चुम्बकीय तरंगें और कम्पन होते है । इसिलिए वे एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होंगें । यदि स्त्रि में अधिक है तो पुरुष आकर्षित होगा और यदि पुरूष में अधिक है तो स्त्री होगी । महात्मा योगियों में वे सर्वाधिक होते है । जो व्यक्ति उनके सीमा क्षैत्र में प्रवेश करता है ,वह शांति का अनुभव करता है । उनके ब्रह्मलीन होने के बाद भी उनके समाधि स्थल के वातावरण में वे कण विद्यमान रहते है। जिनके द्वारा दिव्य पुरुषों की आत्माएं उस स्थान सेक एवं उस समाधि स्थल से सम्पर्क बनाए रहती है ।

सूर्य से पराकासनी किरणें निकलती है जो किटाणुनाशक होती है , बिमारियों का नाश करती है , मुख का आकर्षण बढ़ाती है , नैत्र ज्योति बढ़ती है ,यौवन स्थाई रखती है । संतानों के लिए भी जननाणुओं को प्रभावित कर गुणों को उत्पन्न करती है ।चार प्रकार की सूर्य की स्थिति होती है -

1-ऊषा काल -आकाश सफेद एवं तारे रहते है ।
2-अरुणोदय काल - पूरब का आकाश पटल सिन्दूरी होता है ।
3- सूर्योदय काल - पूरे स्वरुप में सूर्योदय ।
4-प्रातःकाल - सूर्य चमकता है उस पर नैत्र स्थिर नही रहते ।

प्रथम दो कालों में पराकासिनी किरणों का विकीर्ण अत्यधिक रहता है । उस समय पदमासन में प्राकृतिक वातावरण में बैठकर नैत्रों को खोलकर ,स्थिर भाव से एकाग्रचित्त होकर ,बिना पलक झपकाए दोनों कालों में वर्णो को देखना चाहिए । सूर्योदय काल को भी स्थिर भाव से देखो । उससे ब्रह्माण्डीय ऊर्जा उपलब्ध होगी । उस काल में ब्रह्माण्डीय ऊर्जा विकीरित होती है जो रक्त प्रवाह में सहयोगी होती है , रक्त कण बढ़ते है और मस्तिष्क के विकारों को भी दूर करती है । हृदय भी शुद्व रहता है । प्रातःकाल होने पर हमें ताम्रपात्र में जल,लाल पुष्प और लाल चंदन डालकर सूर्य देवता को अर्ध्य देना चाहिए । आदित्यहृदयस्त्रोत का का पाठ भी करना चाहिए । इससे दारिद्रयनाश ,रोग नाश , गृह-कलह एवं आपसी द्वेष शांत होते है ।

शरीर के सभी अंगों से 24 घण्टे चुम्बकीय विकीरण हुआ करता है । मस्तिष्क , मेरुदण्ड एवं नाभी से निकलने वाली किरणे सबसे महत्वपूर्ण होती है । इन केन्द्रों पर मन एकाग्र करने पर वे प्रगाढ़ होती चली जाती है ।

हृदय पर मन एकाग्र करने पर सारे शरीर में प्राण गति समान हो जाएगी और सारा शरीर हल्का अनुंभव करेगा । देवी-देवता की आराधना उस समय करने पर भी भारी सफलता प्राप्त होगी ।

आज्ञा चक्र पर ध्यान केंद्रित करने से दूसरे का विचार जानना संप्रेषित करना आदि सम्भव हो जाता है ।

मेरुदण्ड पर ध्यान के लिए हम गर्भासन की मुद्रा में ध्यान का अभ्यास करें इससे शिघ्र ही समाधि उपलब्ध होती है । जितनी भी प्रकार की समाधियां है उनमें गर्भासन ध्यान द्वारा उपलब्ध समाधि सर्वोपरि एवं सर्वोत्तम है ।

तारूण्य के लिए अपनी आयू से कुछ छोटी जीवनसंगनी उचित होती है । जैसे 25 वर्ष के व्यक्ति के लिए 16 वर्ष की जीवन संगनी सभी दृष्टि से अनुकूल एवं योग्य होती है । इससे अधिक अंतर नुकसानदायक है ।

योग साधना का प्रारम्भ नाभि से होता है यह प्रथम सोपान है । नाभी प्राणों का संचयन स्थल है , इसी बिन्दू से प्राण ऊर्जा हृदय एवं उससे मस्तिष्क को प्रेषित होती है और मस्तिष्क प्राण ऊर्जा को नाड़ियों के माध्यम से सारे शरीर में प्रवाहित करता है । इससे स्पष्ट है कि नाभि मनुष्य की सारी गतिविधियों का केन्द्र है । वह गति शारिरिक हो ,मानसिक हो या आध्यात्मिक । यदि नाभि ऊर्जस्वित नहीं होगी तो अन्य शारिरिक अवयवों में ऊर्जा शक्ति का व्हास हो जाएगा । शरीर के अस्वस्थ होने पर मन एवं आत्मा भी अस्वस्थ हो जाएंगें ।

चाहे कुण्डलिनी जागृत करना हो , या समाधि की अवस्था निर्भर है । स्वस्थ नाभी पर । योगी अपनी नाभी को ऊर्जस्वित कर उसके माध्यम से मन को नियंत्रित करते है । फिर मन के माध्यम से संकल्प शक्ति को दृढ़कर उसके द्वारा मस्तिष्क केंद्रों को स्थिर करते है । जिससे सभी सिद्धियां प्राप्त होती है । ऐसे साधक सूक्ष्म प्राणायाम द्वारा ऊर्जस्वित करते है । इस अवस्था में साधक की स्थिति नाभी पर होती है । नाभी के पूर्ण रूप से ऊर्जस्वित होने पर साधक हृदय केन्द्र की और बढ़ता है । प्राणायाम से प्राण की और ध्यान से मन की साधना होती है । ध्यान से समाधि होती है । इस स्थिति में योगी की स्थिति मस्तिष्क के सोम चक्र पर होती है अचानक हृदय केन्द्र कार्य करना बंद करदे तो भी 20-30 मिनट तक नाभि केन्द्र सक्रिय रहता है । इस अवधि में उपचार द्वारा हृदय को ठीक किया जा सकता है । योगी इसीकारण चाहें तो नाभि के सक्रिय रहने के कारण उसकी ऊर्जा का आश्रय लेकर पुनः जीवित हो जाते है ।

अन्य-

गम के जहर को जिसको पीना आगया ।
यह सच है दूनिया में उसी को जीना आगया ।।

पाया कहे सो बावरा , खोया कहे सो कूर ।
पाया खोया कुछ नहीं , ज्यों का त्यों भरपूर ।।

बाबा बुलेशाह -

आप ही तू अनल -हक कहाता है , फिर आप ही तू जालिम बन के आता है ।
फिर आप ही तू आप ही को सूली पर चढ़ाता है ,
फिर आप ही तू अपना तमाशा देखकर हँसता है ।

कबीर भजन -

दूनिया दो दिन का है मेला , जिसको समझ पड़े अलबेला ।
जैसी करनी ,वैसी भरनी , गुरू हो या हो चेला ।
सोने चाँदी धन रतनों से खेल आजीव खेला ,
चलने की जब धड़ियां आई ,संग चले नहीं ढ़ेला ।।
महल बनाया , किला बनाया , कर गयो मेरा -मेरा ,
कहत कबीर अंत समय जब छोड़ देंगें अकेला ।।
पाँच -पच्चीस भये है बराती , ले चल ले चल होरी ।
कहत कबीर बुरा नहीं मानो , ये गति सबकी होनी ।।
इस जग में नहीं कोई तेरा , न कोई सगा -सगाई ,
लोक कुटुम्ब तेरे कट गए , प्राणी जाए अकेला ।।

हमको औढ़ावे चादरिया , चलती बिरिया ,चलती बिरिया ।
प्राण राम जब निकसन लागे , उलट गई दो नैन पुतरिया ।
भीतर से जब बाहर लाए , छूट गई सब महल अटरिया ।
चार जने मिल खाट उठाए , रोवत ले चले डगरिया ।
कहत कबीर सुनो भई साधो ,संग चले वा सूखी लकरिया ।।

जगत में झूठी देखी प्रीत ।
अपने ही सुख सिद्ध सब लागे किया दारा किया मीत ।।

दारा-पत्नी

श्री रविदास जी -

प्राणी किआ मेरा किआ तेरा , जैसे तरवर पंखि बसेरा ।
जल की भींति , पवन का खंभा , रकत बूंद का गारा ।
हाड़ माँस नाड़ी को पिंजरू , पंखी बसे बिचारा ।
राखहुं कंध उसारहुं नीवां , साढ़े तीन हाथ तेरा सीवां ।
बंके बाल पाग सिरि हेरी , हहु तनु होहगो भसम की ढ़ेरी ।
ऊँचे मंदर , सुंदर नारी , राम नाम बिनु बाजी हारी ।
मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी , ओछा जनम हमारा ।
तुम सरनागति राज रामचंद , कहे रविदास चमारा ।।

अन्य –

जर्रे –जर्रे में है झाँकी भगवान की, किसी सूझ वाली आँख ने पहचान की ।
नामदेव ने पकाई रोटी ,कुत्ते ने उठाई ,
पीछे घी का कटोरा लिये जा रहे है ।
बोले रूखी तो न खाओ , थोड़ा घी तो लगाओ ।
रूप अपना क्यों मुझसे छूपा रहे ।
तेरा –मेरा एक नूर , फिर काहे को हजूर ,
तुने शकल बनाई है सुआन की ,
मुझे औढ़नी ओढादी इनसान की ।

तुलसी दास जी –

सत्य वचन , आधीनता , पर धन –उदास ,
इनसे हरि ना मिले तो जामिन तुलसिदास ।
सत्य वचन , आधीनता पर तिय मातु समान ,
इनसे हरि ना मिले तुलसी झ्ठ जबान ।

सेवा बन्दी और आधीनता सहज मिले रघुराई ,
हरि से लागि रहो रे भाई ।

शेरो –शायरी –

हजारों खिज्र पैदा कर चुकी है ,नस्ल आदम की ।
ये सब तस्लीम लेकिन आदमी अब तक भटकता है । ।

खिज्र – महात्मा या संत , तस्लीम – स्वीकार

यही जिंदगी मुसीबत , यही जिंदगी मसर्रत ।
यही जिंदगी हकीकत यही जिंदगी फसाना ।।

डरूं मैं किसलिए गुस्से से , प्यार में क्या था ।
मैं अब खिजां को जो रोऊं , बहार में क्या था । ।

ताब मंजिल रास्ते में , मंजिलें थी सैंकड़ों ।
हर कदम पर एक मंजिल थी , मगर मंजिल न थी ।।

ताब मंजिल – उस सत्य की यात्रा के मार्ग पर

लो हम बताएं गुंभा और गुल में फर्क है क्या ।
एक बात है कही हुई , एक बेकही हुई ।

गुंभा – कली , गुल – फूल

तेरी मंजिल पर पहुँचना कोई आसान न था ।
सरहदे अक्ल से गुजरे तो यहां तक पहुंचे ।।

जुस्तजु–ऐ – मंजिल में इक जरा जो दम लेने ,
काफिले ठहरते है राह भूल जाते है ।

गो हाथ को जुंबिश नहीं , आँखों में तो दम है ।
रहने दो अभी सागर –ओ –मीना मेरे आगे ।।

कुछ हंसी ख्वाब और कुछ आंसू ।
उम्रभर की बस यही कमाई है ।

दुनिया का एतबार करें भी तो क्या करें ।
आंसू तो अपनी आँख का अपना हुआ नहीं ।।

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन,
दिल बहलाने को गालिब ये ख्याल अच्छा है ।।

मुझे रोकेगा तू ऐ नाखूदा क्या गर्क होने से ।
कि जिनको डूबना है डूब जाते है सफीनों में ।।
सफीनों –नाव

तर्के–मय ही इसे समझना शेख ।
इतनी पी है कि पी नहीं जाती । ।
तर्के – त्याग , छोड़ना

जिन्दगी क्या किसी मुफलिस की कबा है ,
जिसमें हर घड़ी दर्द के पैबन्द लगे जाते है ।।
कबा – लबादा

कौन रोता है किसी और की खातिर ऐ दोस्त ।
सबको अपनी ही किसी बात पर रोना आया ।।

बस इसी धुन में रहा मर के मिलेगी जन्नत ।
तुझको ऐ शेख न जीने का करीना आया ।।

खुश्क बातों में कहां ऐ शेख कैफे जिन्दगी ।
वो तो जीकर ही मिलेगा मजा जो मजा जीने में है ।।

पीने वाले एक या दो ही होते है ।
मुफ्त सारा मयकदा बदनाम होता है ।।

लुफ्ते मय तुझसे क्या कहूं जाहिद ।
हाय कमबख्त तूने पी ही नहीं ।।

क्योंकर कहूं कि कोई तमन्ना नहीं मुझे ,
बाकी अभी है तर्के– तमन्ना की आरजू ।।

मैंने पूछा था कि मंजिले– मकसूद कहां ।
खिज्र ने राह बताई मुझे मयखाने की ।।

थमते –थमते थमेंगें आँसू , रोना है , कुछ हँसी नहीं है ।।

उम्रे–दराज माँगकर लाए थे चार दिन ।
दो आरजू में कटगए , दो इन्तजार में ।।

न हरम में है न दैर में , हम तो दोनों जगह पुकार आए।।

जिंदगी है या कोई तुफान है , हम तो इसी जीने के हाथों मर चले ।।

हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन ,
मैं उनकी राह में आँखें बिछा के देख तो लूं ।।

कोई आया न आयेगा लेकिन , क्या करें गर न इन्तजार करें ।।

आशिकी से मिलेगा ऐ जाहिद , बंदगी से खुदा नहीं मिलता ।।

आशिकी–प्रेम

सिर्फ एक कदम उठा था गलत राहे शौक में ,
मंजिल तमाम उम्र मुझे ढूढ़ती रहीं ।।

आरजू तेरी बरकरार रहे , दिल का क्या है , रहा न रहा ।।

कुछ इतने दिये है हसरते –दीदार ने धोखे ।
वो सामने बैठें है, यकीं हमको नहीं है ।।

ढूंढता फिरता हूं ऐ इकबाल अपने आप को ,
आप ही गोया मुसाफिर , आप ही मंजिल हूं मै।।

सुबह होती है , शाम होती है , उम्र यूं ही तमाम होती है ।।

जब कश्ती साबित–ओ –सालिम थी ,
साहिल की तमन्ना किसको थी ,
अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर ,
साहिल की तमन्ना कौन करे ।

साबित–ओ –सालिम– यात्रा करने लायक
साहिल–किनारा , शिकस्ता–टूटी हुई

समझे थे तुमसे दूर निकल जाएंगें कहीं,
देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है ।

मुहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते है ।
ये वो नग्मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता ।।

जो कहोगे तुम , कहेंगे हम भी हां यूं ही सही ,
आपकी गर यूं खुशी है , मेहरबां यूं ही सही ।।

इश्क करता है तो फिर इश्क की तौहीन न कर ,
या तो बेहोश न हो ,हो तो , न फिर होश में आ ।।

दीवानगी –ए– इश्क के बाद आगया होश ,
और होश भी वो होश की दीवाना बनादे ।।

जो स्वयं चलपाए कांधे पर लिए अपना सलीब ,
हक बजानिब है वही ईमान की बातें करें ।।